तासां त्रिवर्गसंसिद्धौ प्रदिष्टं कारणद्वयम् । भर्तुर्यदनुकूलत्वं यच्च शीलमविप्लुतम् ॥३६
न तथा यौवनं लोके नापि रूपं न भूषणम् । यथा प्रियानुकूलत्वं सिद्धं शश्वदनौषधम् ॥३७
वयोरूपादिहारिण्यो दृश्यन्ते दुर्भगाः स्त्रियः । वल्लभा मन्दरूपाश्च बह्व्यो गलितयौवनाः ॥३८
तस्मात्प्रियत्वं लोकानां निदानं [1]योग्यतापरम् । तां विनान्ये गुणा वन्ध्याः सर्वेऽनर्थकृतोऽपि वा ॥३९
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विदध्यादात्मयोग्यताम् । परचित्तज्ञता चास्या मूलं सर्वक्रियास्विह ॥४०
बहिरागच्छतो ज्ञात्वा कालं संमृज्य भूमिकाम् । सज्जीकृतासना तिष्ठेत्तस्याज्ञां प्रतितत्परा ॥४१
स्वयं प्रक्षालयेत्पादावुत्थाप्य परिचारिकाम् । तालवृन्तादिकैः कुर्याच्छ्रमस्वेदापनोदनम् ॥४२
आहारस्नानपानादौ सस्पृहं यत्र लक्षयेत् । तदिंगितज्ञा तत्त्वेन सिद्धमस्मै निवेदयेत् ॥४३
सपत्नीपतिबन्धूनां भर्तृचित्तानुकूल्यतः । प्रतिपत्तिं प्रयुञ्जीत स्वबन्धूनां न वै तथा ॥४४
तेषु चात्मनि च ज्ञात्वा भर्तृचित्तं प्रसादयेत् । प्रतिपत्तिं तथाप्येषां नाद्रियेत स्वबन्धुषु ॥४५

राजा लोग हैं ।३५। स्त्रियों के लिए धर्मार्थ काम त्रिवर्ग की सिद्धि के दो कारण बतलाये जाते हैं। प्रथमतः उनका पति के अनुकूल व्यवहार द्वितीय उनके पवित्र शील सदाचार ।३६। स्त्रियों के लिए न तो उनका यौवन उतना सुख देने वाला होता है न रूप होता है न भूषण होता है, जितना पति की अनुकूलता होती है, पति की अनुकूलता ही उनके शाश्वत कल्याण की एकमात्र औषधि है ।३७। सुन्दर जवानी एवं मनोहारी रूपवाली स्त्रियाँ भी अभागिनी एवं दुर्भगा देखी जाती हैं, इसके विपरीत उनसे रूप में हीन कटिवाली ऐसी स्त्रियाँ जिनका यौवन कभी समाप्त हुआ रहता है, पति की परम वल्लभा एवं (सुखी) होती हैं ।३८। इसलिए प्रिय होने का कारण लोक में योग्यता ही है उस योग्यता अर्थात् पति को अपने अनुकूल करने की क्षमता के विना अन्य सारे गुण निष्फल हैं यही नहीं इसके अभाव में सारे गुण भी अनर्थकारी बन जाते हैं ।३९। इसलिए स्त्रियों को सभी उपायों द्वारा अपने में वह योग्यता लानी चाहिये, स्त्रियों की दूसरों के मन की बात जान लेने की विशेषता सारे कार्यों में सफलता मूल होती है ।४०। पति को बाहर से आता हुआ जान कर भी भूमि और आँगन आदि को खूब स्वच्छ करके शय्या को सजाकर प्रतीक्षा करनी चाहिये और आने पर उसकी आज्ञा का तत्परतापूर्वक पालन करना चाहिये ।४१। दासी

अपि भर्तुरभिप्रेतं नारी तत्कुलवासिनी । सत्कारैर्निजबन्धूनां तेन नोपैति वाच्यताम् ॥४६
पूज्य एव हि सम्बन्धः सर्वावस्थासु योषिताम् । कस्ततोऽप्युपकारांशं लिप्सेत कुलजः पुमान् ॥४७
सम्पूज्य स्वसुता तस्मै विधिवत्प्रतिपाद्यते । ततोऽस्या लिप्सते नाम किमकार्यमतः परम् ॥४८
कन्यां प्रदाय यैर्वृत्तिरात्मनः परिकल्प्यते । दासभण्डनटादीनां मार्गोऽयं न महात्मनाम् ॥४९
तस्मात्स्त्रीबांधवा नित्यं प्रीतिमात्रैकसाधिनीम् । प्रतिपत्तिं समादद्युः सम्बन्धिभ्यः प्रसंगिनीम् । ५०
तस्या भर्तरि रक्षेत प्रीतिं लोके च वाच्यताम् । आत्मनोऽसत्प्रवादं च चेष्टेरन्साधुवृत्तयः ॥५१
एवं विज्ञाय सद्वृत्तं स्त्री वर्तेत तथा सदा । येन तत्परिवर्गस्य भवेद्भर्तुश्च सम्मता ॥५२
प्रियापि साधुवृत्तापि विख्याताभिजनापि च । जनापवादात्सम्प्राप सीतानर्थं सुदारुणम् ॥५३
सर्वस्यामिषभूतत्वाद्गुणदोषानभिज्ञतः । प्रायेणाविनयौचित्यात्स्त्रीणां वृत्तं हि दुष्करम् ॥५४
अगृह्यत्वान्मनोवृत्तेः प्रायः कपटदर्शनात् । निरङ्कुशत्वाल्लोकस्य निर्वाच्या विरलाः स्त्रियः ॥५५
दैवयोगादयोगत्वाद्व्यवहारानभिज्ञतः । वाच्यतापत्तयो दृष्टाः स्त्रीणां शुद्धेऽपि चेतसि ॥५६
तासां दैवप्रतीकारो नोपभोगादृते भवेत् । चारित्रं लोकवृत्तं च एतयोर्विदुरौषधम् ॥५७

निवास करने वाली पति के समस्त अभिप्रायों को समझने वाली स्त्री अपने बन्धु वर्गादि के सत्कारों से सम्मानित होकर कभी निन्दा की पात्र नहीं बनती ।४६। सभी अवस्थाओं में स्त्रियों का सम्बन्ध पूजनीय माना गया है उसके कुल (पिता के कुल) में उत्पन्न होने वाला ऐसा कौन-सा पुरुष होगा जो उससे भी उपकार एवं लाभ की इच्छा करेगा ।४७। लोग अपनी कन्या को विधिपूर्वक पूजित कर जामाता को दान देते हैं तो फिर उसी कन्या से यदि लाभ की वे इच्छा करें तो इससे बढ़कर निन्द्य कर्म क्या होगा ?।४८। जिसे अपनी कन्या दे दिया गया है उसी से अपनी जीविका की भी इच्छा करना यह पद्धति तो दास, भाँड़,

हिंदोलकादिक्रीडायां प्रसक्तां तरुणीं निशि । रममाणां विटैः सार्धं विधवां स्वैरचारिणीम् ॥५८
वृद्धादिभार्यां [1]सज्जायां यानगेयादिसंगिनीम् । कः श्रद्दध्यात्सतीत्येवं साध्वीमपि हि योषितम् ॥५९
यौ चासामिङ्गिताकारौ सन्दिग्धार्थप्रसाधकौ । तयोस्तत्त्वपरिज्ञानं विषयो योगिनां[2] यदि ॥६०
तस्माद्यथोक्तमाचारमनुतिष्ठेत्सुसंयता । मिथ्यालग्नोप्यसद्वादः कम्पयत्येव तत्कुलम् ॥६१
त्रिकुल्या वाच्यता रक्ष्या प्रतिष्ठाप्यथ सन्ततिः । भर्तुस्त्रिवर्गसिद्धिश्चसाध्यं तत्कुलयोषिताम् ॥६२
पातयन्त्येव दौःशील्यादात्मानं सकुलोत्रयम् । उद्धरन्ति तदैवैताः स्त्रियश्चारित्रभूषणाः ॥६३
भर्तृचित्तानुकूलत्वं यासां शीलमविच्युतम्[3] । तासां रत्नसुवर्णादि भार एव न मण्डनम् ॥६४
लोकज्ञाने परा कोटिः पत्यौ भक्तिश्च शाश्वती । शुद्धान्वयानां नारीणां विद्यादेतत्कुलव्रतम् ॥६५
तस्माल्लोकश्च भर्ता च सम्यगाराधितो यया । धर्ममर्थं च कामं च सैवाप्नोति निरत्यया ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मकथनं
नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३।

ही दो ऐसे उपाय हैं जिन्हें उनके अपवाद को दूर करने की औषधि कहा जाता है ।५७। हिंडोला आदि क्रीड़ाओं में रात के समय यदि कोई तरुणी स्त्री बहुत आसक्ति दिखलाती है, अथवा भाँड आदि हीन कोटि के लोगों के साथ सहवास करती है अथवा कोई विधवा होकर अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करती है, अथवा कोई वृद्ध मनुष्य की गृहणी तरुणी स्त्री है, अथवा सच्चरित्र होकर भी कोई सवारी वा गाने बजाने में विशेष सहयोग करती है तो कौन ऐसा पुरुष है जो ऐसी सती स्त्रियों पर श्रद्धा की दृष्टि रखेगा भले ही वे चरित्र से साध्वी हो ।५८-५९। इन स्त्रियों की इंगिति एवं आकार ही संदिग्ध अर्थ की पुष्टि करने वाले होते हैं उनके इंगित एवं आकार का तात्त्विक ज्ञान योगियों को ही ज्ञात हो सकता है । यदि वे योगी जन जानने की विशेष इच्छा करें तो ।६०। इसलिए जैसा ऊपर कहा जा चुका है कुलवधू को संयम एवं शान्तिपूर्वक सदाचारों का पालन करना चाहिये । झूठ-मूठ में भी लगा हुआ अपवाद स्त्रियों के समस्त परिवार तक को कम्पित कर

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पतिपरदेशवासे स्त्रीणां शृङ्गारनिषेधः

ब्रह्मोवाच

प्रेषिते मण्डनं स्त्रीणां पत्यौ मङ्गलमात्रकम् । निष्पादनं च यत्नेन तदारब्धस्य कर्मणः ॥१
शय्यामुपार्जनमर्थानां व्ययानां परिहापणम् ॥२
व्रतोपवाससतात्पर्यं तद्वार्तापरिमार्गणम् । दैवज्ञेक्षणिकप्रश्नो देवानामुपयाचनम् ॥३
नित्यं तस्यागमाशंसा क्षेमार्थं देवपूजनम् । न चात्युज्ज्वलवेषत्वं न सदा तैलधारणम् ॥४
ज्ञातिवेश्म न गन्तव्यं सकामगमनेन[1] च । गुरुणामाज्ञया यावद्भर्तुराप्तजनैः सह ॥५
तत्रापि न चिरं तिष्ठेत्स्नानादीन्वापि नाचरेत् । यावदर्थं क्षणं स्थित्वा ततः शीघ्रं समाचरेत् ॥६
आगते प्रकृतिस्थैव कृत्वा तात्कालिकं विधिम् । मुक्तप्रवासने पथ्ये स्नाते भुक्तवति प्रिये ॥७
आत्मानं समलङ्कृत्य सविशेषं मुदान्विता । देवपूजोपहारादीन्दद्यात्प्रागुपपादितान् ॥८

अध्याय १४

पति के परदेश में रहने पर स्त्रियों का शृङ्गार निषेध

ब्रह्मा बोले—ऋषिवृन्द ! पति के परदेश जाने पर कुलवधू केवल सौभाग्य सूचक अलंकारों को धारण करे । और प्रयत्न पूर्वक पहले से आरम्भ किये गये कर्मों को ही निष्पन्न करे ।१। उसे उस समय गुरुजनों के समीप में अपनी शैय्या स्थापित करना चाहिये शरीर में विशेष शृङ्गार एवं आभूषणादि की सजावट नहीं करनी चाहिये । यथासम्भव प्रत्येक कार्य में धन अर्जित करने की चेष्टा करनी चाहिये और

कनिष्ठामातृवज्ज्येष्ठां तदपत्यानि चात्मवत् । पश्येत्तत्परिवर्गं तु नित्यं स्वपरिवर्गवत् ॥९
तत्पुरोनासने तिष्ठेत्पतिं नामंत्रयेत च । तदभिप्रायतः कुर्यात्प्रवृत्तिं सर्वकर्मसु ॥१०
न संसृजेत तद्द्विष्टैः सख्यं कुर्वीत तत्प्रियैः । जनमाप्ततमं तस्य सदाभर्तुश्च मानयेत् ॥११
पैतृकात्समुपानीतं वसुसौगंधिकादिकम् । तस्मै निवेद्यात्मतया तदा तदुपयोजयेत् ॥१२
सोऽपि तत्प्रीतये किंचिदादद्यादल्पमूल्यकम् । संगोप्य मातृवत्स्थेयं तत्तथैवोपयोजयेत् ॥१३
तत्प्रीत्यर्थं गृहीतं यद्वैलक्ष्यादिनिवृत्तये । सविशेषं प्रसंगेन तस्यैतत्प्रतिपादयेत्[1] ॥१४
स्त्रीणां यदेतत्सापत्न्यं परं मात्सर्यकारणम् । तस्मात्तत्परिहर्तव्यं परमोदारचर्यया[2] ॥१५
तथा कल्पितनेपथ्या भर्तुः पर्यायवासरे । ह्रियमादयमानेव[3] पतिं गच्छेद्विसर्जिता ॥१६
गत्वा रहसि भर्तारं तत्कालोचितसंभ्रमैः । तद्भावानुगतैस्तैस्तैः सविशेषमुपाचरेत् ॥१७
प्रतिबुध्य ततः काले सविशेषं त्रपान्विता । ज्येष्ठाय वसतिं गच्छेद्विशेषेण तथा पुनः ॥१८
अप्रातिकूल्यं ज्येष्ठाया हितमन्यत्र योषितः । ततः शनैस्त्ववच्छिद्य पतिं स्ववशमानयेत् ॥१९

माता के समान व्यवहार करना चाहिये और उसके बच्चों को अपने समान समझना चाहिये उसके परिवार एवं नौकर चाकर आदि को भी अपने ही परिवार एवं नौकरों के समान समझना चाहिये ।९। उसके सामने न तो आसन पर बैठे और न पति को बुलावे । प्रत्युत उसके अभिप्राय को भलीभाँति सोच-विचार कर सभी कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिये ।१०। उसका जिन लोगों के साथ द्वेष हो, उनके साथ कभी संसर्ग न स्थापित करे उसके प्रियजनों के साथ अपनी भी मित्रता करे ।११। पति के गुरुजनों का सर्वदा समादर करे । अपने पिता के घर से आई हुई खाने-पीने अथवा शृंङ्गार की सुगन्धित आदि सारी सामग्रियों को सर्वप्रथम आत्म भावना से उसको निवेदित करे और उसके बाद निजी उपयोग के लिए

बहिष्पाकादियोगेन चतुःषष्ट्या रहोगतम् । ज्येष्ठामतिशयानेव भर्तारमुपरञ्जयेत् ॥२०
प्रागल्भ्यं रहसि स्त्रीणां लज्जाधिक्यं ततोऽन्यदा । चित्तज्ञानानुवृत्तिश्च पत्यौ संसेवनं परम् ॥२१
एवमाराध्य भर्तारं गृहमाक्रम्य च क्रमात् । गौरवं प्रतिपत्तिं वा ज्येष्ठादिषु न हापयेत् ॥२२
गृहव्यापारदानेषु पतिं गूढं तथा वदेत् । अधिकुर्यादनिच्छन्ती ज्येष्ठैवेनां यथा बलात् ॥२३
सापि विज्ञाय भर्तारं कनिष्ठाकृष्टमानसम् । विश्रामं प्रार्थयेदेनामधिकुर्यात्सुतामिव ॥२४
मत्वा भर्तुरभिप्रेतं रक्षन्ती निजगौरवम् । कृतं भर्त्रनुकूलं स्यात्तदिष्टायानुमोदयेत् ॥२५
स्वामिनो यदभिप्रेतं भृत्यैः किं क्रियतेऽन्यथा । क्लिश्यते तत्र मूढात्मा परतन्त्रो वृथा जनः ॥२६
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः । हितं स्वाम्यनुकूलत्वं नारीणां तु विशेषतः ॥२७
सापि ज्येष्ठापतिं चैव गृहतन्त्रं च सर्वदा । समावर्ज्य[1] गुणैर्धीरा प्रागवस्थां न विस्मरेत् ॥२८
न सौभाग्यमदं कुर्यान्न चौद्धत्यादिविक्रियाम् । नितरामानतिं गच्छेत्सदानार्यश्यादिव[2] ॥२९

कर ले ।१९। बाहर खूब अच्छे भोजनादि की व्यवस्था द्वारा एवं अन्तःपुर में चौंसठ कलाओं की निपुणता द्वारा छोटी वधू ज्येष्ठ सपत्नी को अतिक्रान्त कर पति को परम सन्तुष्ट कर अपने अधीन कर लेती है ।२०। एकान्त स्थल में पति के साथ प्रगल्भता (ढिठाई) का व्यवहार करना चाहिये अन्यत्र तो लज्जा की अधिकता ही (उसका भूषण है) पति की चित्तवृत्ति के अनुकूल उसकी सेवा में सर्वदा लगा रहना ही कुल वधू का एकमात्र धर्म है ।२१। इस प्रकार पति की आराधना में तत्पर रहकर और उसमें सफलता प्राप्त कर जिस क्रम से पतिगृह में आगमन हुआ हो, उस क्रम के अनुसार अपने से ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ जनों के गौरव का सम्मान आदि की हानि नहीं करनी चाहिये ।२२। घरेलू कार्यों तथा दानादि सत्कर्मों में पति से गुप्त रूप में बात करनी चाहिये । इस प्रकार बाहर से इच्छा प्रकट किये बिना ही ज्येष्ठ सपत्नी की भाँति पति को अपने अनुकूल कर लेना चाहिये ।२३। ज्येष्ठ कुलवधू को चाहिये कि जब वह देखे कि पति का

यथा योग्यतया पत्यौ सौभाग्यमभिवर्धते । स्पर्धयेच्च कुलस्त्रीणां प्रश्रयोपाधिकं तथा ॥३०
एवमाराध्य भर्तारं तत्कार्येष्वप्रमादिनी । पूज्यानां पूजने नित्यं भृत्यानां भरणेषु च ॥३१
गुणानामर्जने नित्यं शीलवत्परिरक्षणे । प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मेषु सपत्नीकर्तव्यवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दुर्भगा च पुनर्नित्यमुपवासादितत्परा । बाह्येषु पतिकृत्येषु स्याद्विशेषाभियोगिनी ॥१
न प्रशंसां सपत्नीषु निंदां चापि तथात्मनि । असूयां भर्तुरीर्ष्यां वा प्रणयं वापि दर्शयेत् ॥२
मद्विधा या हि बह्वेतत्तच्चात्यंतिकमश्नुते । यदस्या युष्मतो यायाद्भार्याशब्दाभिधेयताम् ॥३
न च निर्भूषणा तिष्ठेन्न चाप्युद्धतभूषणा । नान्यदा गंधमाल्यादि ग्राह्यं पत्युपचारतः ॥४
तन्न्यूनं सर्वशो ग्राह्यं वल्लभाया विशेषतः । भूषणं गन्धमाल्यं तु तावत्कालमलक्षितम् ॥५

दिखाते हुए सब कार्य करती रहे ।२९। जिस प्रकार से एवं जिस योग्यता से पति को अनुकूल कर सौभाग्य की वृद्धि होती है उसके लिए कुलवधुओं को परस्पर स्पर्द्धा करनी चाहिये और वैसे सद्गुणों को विशेष रूप में प्रश्रय देना चाहिये ।३०। इस प्रकार पति के कार्यों एवं सेवाओं में सावधान रहकर पूजनीयों की पूजा एवं भृत्यवर्गों की पालना में तत्पर रहकर सर्वदा सद्गुणों के अर्चन एवं रक्षण में तत्पर रहकर कुलवधू

सम्बाधानां प्रदेशानां नित्यं स्वेदादिमार्जनम् । दन्तनासादिपङ्कानां विगन्धस्य च शोधनम् ॥६
निमित्तं भर्तुरेतासां यत्किंचिदभिलक्षयेत् । नानेन वा तयोर्यत्नं विदध्यादङ्गमार्जने ॥७
सर्वासां च सपत्नीनां सर्वत्रानुगता भवेत् । वैतसीं वृत्तिमास्थाय वल्लभाया विशेषतः ॥८
अन्यस्या यदनुष्ठेयं यन्न सीदेत्समर्पितम् । भर्तुश्चाविदितं यत्नात्तत्कुर्यादविरोधि चेत् ॥९
कोशवस्त्रान्नताम्बूलगन्धापानौषधादिकम् । तत्सर्वमनियुक्तानां दोषवत्वाद्विरुध्यते ॥१०
यत्तु मुक्तमनुष्ठेयं गृहसम्मार्जनादिकम् । स्त्रीणामनधिकारेऽपि प्रायस्तद्विधिरुच्यते ॥११
अभ्यङ्गोद्वर्तनं स्नानं भोजनं मण्डनानि च । कुर्याद्भर्तुरपत्यानां धात्रीकर्माणि सादरम् ॥१२
आत्मवत्तान्यपत्यानि साधयत्यनुयोगतः । स्वेनाप्यमीषां वित्तेन विदध्यान्मण्डनादिकम् ॥१३
भोगः स्वयमपत्यैर्वा स्त्रीवित्तस्य पतिर्विधा । पूर्वे वयस्यभिनन्द्य पश्चिमे चोपयोजनम् ॥१४
उभयोगस्तु वा मा वा कर्मजः पृथगेव सः । सद्वृत्ते त्वधिकां ख्यातिं कुर्वीत क्रियया पुनः ॥१५
न कापि दुर्भगा नाम सुभगा नाम जातितः । व्यवहाराद्भवत्येष निर्देशो रिपुमित्रवत् ॥१६

पुष्पादि का इस प्रकार प्रयोग करना चाहिये कि उस समय भी वे आभूषणादि दिखाई न पड़े ।५। उन्हें अपने उदर कुक्षि आदि गोपनीय शरीराङ्गों की विशेष सफाई करनी चाहिये सर्वदा स्वेदादि रहित कर स्वच्छ रखना चाहिये । इसी प्रकार दाँत, नाक एवं पैरों में लगी हुई कीचड़ आदि तथा दुर्गन्धि की भी सफाई करनी चाहिए ।६। पति की प्रसन्नता के लिए इन्हें चाहिये कि जो कुछ भी उचित समझें करें । यदि सामान्य यत्न से सफलता न मिले तो अङ्ग की स्वच्छता पर और अधिक यत्न करें ।७। सभी कार्यों में सर्वदा सपत्नियों की अनुगामिनी बनी रहे विशेषतया जो सपत्नी पति को बहुत प्यारी है उसकी तो सर्वदा टहल बजाती रहें । ऐसे अवसर पर उसे वैतसी (बेंत की) वृत्ति अपनानी चाहिए ।८। सपत्नी के करने का जो कार्य हो उसे वह स्वयं कर ले और जो कुछ मिले उस पर रोष न प्रकट करे । पति के प्रतिकूल जो

भर्तृचित्तापरिज्ञानादननुष्ठानतोऽपि वा। वृत्तैर्लोकविरुद्धैश्च यान्ति दुर्भगतां स्त्रियः ॥१७
आनुकूल्यान्मनोवृत्तैः परोऽपि प्रियतां व्रजेत्। प्रातिकूल्यान्निजोप्याशु प्रियः प्रद्वेषतामियात् ॥१८
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः। प्रियं समाचरेन्नित्यं तच्चित्तानुविधायिनी ॥१९
यामन्यां कामयेत्तासां तं तया संप्रयोजयेत्। कुपितां च प्रियां काञ्चिद्यत्नादस्मै प्रसादयेत् ॥२०
तत्पादपरिचर्यायां गोत्रसंवाहने[1] तथा। पीडने शिरसश्चैव परं कौशलमभ्यसेत् ॥२१
पीडनं मृदु मध्यं च गात्रावस्थाविशेषतः। मुखगात्रादिभिर्लिङ्गैः प्रयोज्यं तत्सुखावहम् ॥२२
बाहूरुकटिपृष्ठेषु स्कंधे शिरसि पादयोः। गाढमर्दनमिच्छन्ति प्रायोन्यत्रापि मध्यमम् ॥२३
निर्मांसेषु प्रदेशेषु नाभिमूलेषु मर्मसु। हृद्गण्डककपोलादाविच्छन्ति मृदुमर्दनम् ॥२४
गाढं जाग्रदवस्थायामर्धसुप्तस्य मध्यमम्। किञ्चित्सपरिघातं च मृदुसुप्तस्य नेति वा ॥२५
विरुद्धं सर्वगात्रेषु[2] लोमवस्तु विशेषतः। उत्कण्डूयत्सु सोद्धर्षं स्नेहाक्तेषु च मर्दनम् ॥२६
स्पर्शाद्रोमाञ्चजननं सनखच्छुरितं शनैः। पुलकोल्लेखनोपेतं शिरःकंडूश्च पार्श्वयोः ॥२७

है।१६। प्रायः स्त्रियाँ पति की चित्त वृत्ति के न जानने के कारण उसके मनोनुकूल न चलने के कारण एवं समाज विरुद्ध कार्यों के करने के कारण दुर्भगा होती है।१७। मनोवृत्ति के अनुकूल चलकर पराया भी प्रिय हो जाता है और मन के विरुद्ध चलकर आत्मीय भी शीघ्र विरोधी बन जाता है।१८। इसलिए प्रत्येक कार्यों एवं अवस्थाओं में स्त्रियों को मन, वचन, शरीर एवं कर्म से पति के प्रिय कार्यों को करना चाहिये और सर्वदा उसकी चित्तवृत्ति के अनुकूल अपने को रखना चाहिये।१९। सपत्नियों में वह जिससे अधिक प्रेम करता हो उससे उसको मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये विघटन का नहीं और यदि कोई उसकी प्यारी सपत्नी कुपित हो गई हो तो प्रयत्न करके उसके लिए उसे प्रसन्न करना चाहिये।२०। उसके पैरों को दबाने में शरीर के समस्त अंगों को मीजने में शिर को सहलाने एवं तैल मालिश करने में परम कुशलता प्राप्त करनी चाहिये।२१। शरीर की स्थिति के अनुसार अंग मीजने के तीन प्रकार

तेषु तेषु च गात्रेषु तत्प्रयोज्यं तथातथा । निद्रागमाय तत्काले रागसंधुक्षणाय च ॥२८
तिष्ठतश्चोपविष्टस्य[1] जाग्रतः स्वपतोऽपि वा । संवाहनं प्रशंसंति यदत्यर्थं सुखावहम् ॥२९
नैष्पन्द्यं पुलकोद्भेदो गात्राणामक्षिमीलनम् । तत्प्रदेशार्पणं किञ्चिद्बोधेद्विक्रृतिदर्शनम् ॥३०
ऊरू मूलादिदेशे च तत्पाणिप्रतिपीडनम् । लक्षयेन्निपुणा[2] यत्र तत्रैवाधिकमाचरेत् ॥३१
एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं यानुतिष्ठति । पतिमाराध्य सम्पूर्णं त्रिवर्गं साधिगच्छति[3] ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे 'शतार्द्धसाहस्र्यां' संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ।१५।

अथ षोडशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्त्रीलक्षणमशेषतः । सद्वृत्तं च तथा स्त्रीणां जगाम स निजालयम् ॥१
ऋषयश्च तथा जग्मुः स्वानि धिष्ण्यान्यशेषतः । स्त्रीलक्षणं तथा वृत्तं श्रुत्वा कृत्स्नं महीपते ॥२
इत्थं लक्षणसम्पन्नां भार्यां प्राप्य महीपते । कर्तव्यं यद्गृहस्थेन तदिदानीं निबोध मे ॥३

उस समय चाहिये कि उन शरीरांगों में कामराग उद्‌बोधित करने के लिए तथा निद्रा आ जाने के लिए उसी के अनुसार उन -उन अङ्गों में मर्दन करे ।२८। बैठे-खड़े सोते जागते अंगों में मर्दन की लोगों ने बहुत प्रशंसा की है क्योंकि वह अतिशय सुख पहुँचाने वाला होता है ।२९। जिस अंग के मर्दन करने से पति-परम सुख का अनुभव करे पुलकावलि उठ जाय, नेत्र मूंद ले, उसी प्रदेश को बारम्बार अर्पित करे उसमें चतुर स्त्री को विशेष रूप से मर्दन करना चाहिये ।३०। [illegible]

वैवाहिकाग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । पञ्चयज्ञविधानं तु पक्तिं कुर्यात्सदा गृही ॥४
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति । कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भीः प्रमार्जनी ॥५
आसां क्रमेण सर्वासां विशुद्धचर्थं[1] मनीषिभिः । पञ्चोद्दिष्टा महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥६
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौमस्तथान्योऽतिथिपूजनम् ॥७
पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः । स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनोदोषैर्न लिप्यते ॥८
देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः । न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न च जीवति ॥९

शतानीक उवाच

यस्य नास्ति गृहे त्वग्निः स मृतो नात्र संशयः । न स पूजयितुं शक्तो देवादीन्ब्राह्मणोत्तमः ॥१०
निरग्निकस्य विप्रस्य कथं देवादयो द्विज । प्रीताः स्युः शान्तये तस्य परं कौतूहलं मम ॥११

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र श्रूयतां परमं वचः । अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते ॥१२

गृहस्थाश्रमी को जो कुछ करना चाहिये उसे मुझसे सुनिये ।३। वैवाहिक अग्नि में यथा विधि गृह्य सूत्रोक्त विधानों को सम्पन्न करना चाहिये । गृहस्थाश्रमी सर्वदा पंच महायज्ञों तथा पाक का विधान सम्पन्न करे ।४। गृहस्थ को सर्वदा पाँच हिंसाएँ लगती हैं जिनके कारण वह स्वर्ग नहीं जा सकता । वे पाँचो हिंसाएँ हैं । कण्डवी (मूसल से चावल आदि को कूटते समय उनमें रहने वाले जीव मर जाते हैं ।) पेषणी (पीसते समय चक्की में कितने जीव मर जाते हैं ।) चुल्ली (चुल्हा साफ करते समय कितने जीव मर जाते हैं ।) उदकुम्भी (कलश में जल भरते निकालते समय भी कितने जीव मर जाते हैं और प्रमार्जनी भी (झाड़ू देते समय भी अनेक जीव मर जाते हैं ।) ।५। इन सब हिंसाओं से शुद्धि प्राप्त करने

व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा[1] नृप । देवादयो भवन्त्येव प्रीतास्तेषां न संशयः ॥१३
विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते । प्रीता देवादयस्तेषां भवन्ति कुरुनन्दन ॥१४

शतानीक उवाच

भगवंस्त्वं तिथीन्ब्रूहि तिथीनां च विधिं हि मे । प्राशनं गृह्यधर्मांश्च उपवासविधीनपि ॥१५
मुच्येम येन पापौघात्त्वत्प्रसाद्द्विजोत्तम । संसाराच्चापि विप्रेन्द्र श्रेयसे जगतस्तथा ॥१६

सुमन्तुरुवाच

शृणु कौरव कर्माणि तिथिगुह्याश्रितानि तु । श्रुतानि घ्नन्ति पापानि उपोषितफलानि च ॥१७

प्रतिपदि क्षीरप्राशनं द्वितीयायां लवणवर्जनम् ।
तृतीयायां तिलान्नं प्राश्नीयाच्चतुर्थ्यां क्षीराशनश्च पञ्चम्याम् ॥
फलाशनः सदा षष्ठ्यां शाकाशनः सप्तम्यां बिल्वाहारोष्टम्यां तु ॥१८
पिष्टाशनो नवम्यामनग्निपाकाहारो दशम्यामेकादश्यां घृताहारो द्वादश्यां पायसाहारः ।
त्रयोदश्यां गोमूत्राहारश्चतुर्दश्यां यवान्नाहारः ॥१९
कुशोदकप्राशनः पौर्णमास्यां हविष्याहारोऽमावास्यायाम् ।
एष प्राशनविधिस्तिथीनामेव चानेन विधिना पक्षमेकं यो वर्तयति ॥२०

विप्र हैं उनको कल्याण प्राप्ति जिस उपाय से होती है, बतला रहा हूँ ।१२। हे राजन् ! ऐसे ब्राह्मणों के ऊपर देवादि व्रत उपवास नियम एवं अन्याय वस्तुओं के दान करने से प्रसन्न होते ही हैं इससे तनिक भी सन्देह नहीं है ।१३। हे महीपते ! कुरुनन्दन ! विशेषतया कुछ विशेष तिथियों में उपवास रखने से उन पर देवादि प्रसन्न होते हैं ।१४

सोऽश्वमेधफलं दशगुणफलमवाप्नोति । स्वर्गे मन्वन्तराणि यावत्प्रतिवसति ॥२१
उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैर्मासत्रयचतुष्टयम् । सोश्वमेधराजसूयानां शतगुणमवाप्नोति ॥२२
स्वर्गे उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैश्चतुर्युगानां दशशतीर्यावत्प्रतिवसति ।
तथाष्टमासपारणे राजसूयाश्वमेधाभ्यां सहस्रगुणफलमवाप्नोति ॥२३
स्वर्गे चतुर्दश मन्वतराणि यावत्प्रतिवसति ।
उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैर्य एवं नियममास्थाय वर्षमेकं वर्तयति॥२४
स सवितुर्लोके कालं मन्वन्तरं प्रतिवसति ॥२५
य एवं नियमान्राजन्नाश्वयुजनवम्यां माघमासस्य सप्तम्यां वैशाखतृतीयायां कार्तिकपौर्णमास्यां तिथिव्रतानि गृह्णाति ब्रह्मचारी गृहस्थो वनस्थो नारी नरो वा शूद्रः प्रयतमानसः दीर्घायुष्यं सवितुः सालोक्यं व्रजति ॥२६
यैश्चापि पुरा राजन्नेन विधिना एतासुतिथिष्वन्यजन्मान्तरे उपवासविधिः कृतः दानानि दत्तानि विविधप्रकाराणि ब्राह्मणानां तपस्विजनेषु वा ॥२७
त्रिरात्रोपवासिनां तीर्थयात्रातपोगुरुमातापितृशुश्रूषानिरतानां तेषां स्वर्गादिभोगवासनादिहागतानां फलनिष्पत्तिचिह्नानि मनुष्यलोके प्रत्यक्षत एव दृश्यन्ते ॥२८
हस्त्यश्वयानयुग्यधनरत्नकनकहिरण्यकटककेयूरग्रैवेयककटिसूत्रकर्णालङ्कारमुकुटवरवस्त्रवरनारी-

---

पक्ष तक नियम रखता है वह अश्वमेध यज्ञ के दस गुणित पुण्य फल की प्राप्ति करता है । और स्वर्ग में अनेक मन्वन्तरों तक निवास करता है ।१८-२१। तीन चार मास तक इस नियम का पालन करने वाला अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों के द्वारा उपगीत होकर अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञों के सौगुने अधिक फल

वरविलेपनसुरूपगुणदीर्घायुषो विगताधिव्याधयो दानोपवासरतानां फलान्येतानि नृत्यगीत-
वादित्रमङ्गलपाठकशब्दैरिहाद्यापि पुण्यकृतो बोध्यमाना दृश्यन्त इति ॥२९
तथाकृतोपवासा अपि हि दृश्यन्ते ॥३०
तथा अदत्तदाना अकृतपुण्याश्च प्रत्यक्षत एव दृश्यन्ते ॥३१
तद्यथा काणकुष्ठिबधिरजडमूकव्यङ्गा रोगदारिद्र्योपसर्गव्याधिहतायुषश्च दृश्यंतेऽद्यापि मानवाः ॥३२

शतानीक उवाच

द्विजेन्द्र तिथयः प्रोक्ताः समासेन त्वया बुध । विस्तरेणैव मे भूयः प्रब्रूहि द्विजसत्तम ॥३३
रहस्यं यत्तिथीनां तु देवानां च विचेष्टितम् । यानीष्टानि च देवानां भोज्यानि नियमास्तथा ॥३४
तानि मे वद धर्मज्ञ येन पूतो भवेन्वहम् । निर्द्वन्द्वो हि यथा विप्र लभे यागफलानि तु ॥३५

सुमन्तुरुवाच

रहस्यं यत्तिथीनां च भोजनं फलमेव तु । यावच्च येन नियमो विशेषात्स्त्रीजनस्य च ॥३६
एतत्ते सर्वमाख्यामो रहस्यं तन्निबोध मे । यन्मया नोक्तपूर्वं हि कस्यचित्सुप्रियस्य हि ॥३७
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यस्य देवस्य या तिथिः । देवतानां रहस्यानि व्रतानि नियमास्तथा ॥३८
ताञ्छृणुष्व महाबाहो गदतो मम नारद । सृष्टिं पूर्वं वदिष्यामि संक्षेपेण तिथिं प्रति ॥३९

सुन्दर चन्दनादि सुन्दर रूप, गुण, दीर्घायु, आधिव्याधि से रहित आदि फल इन उपर्युक्त दानो एवं उपवासों में निरत रहने वाले को प्राप्त होता है नाच, गाना, वाद्य एवं मङ्गल पाठकों द्वारा पुण्यात्मा व्यक्ति शयन के बाद जगाये जाते देखे जाते हैं ।२९। इसके विपरीत जो इन पुण्यप्रद उपवासों का पालन

तमोभूतमिदं त्वासीदलक्ष्यमवितर्कितम् । जगद्ब्रह्मा समागत्यासृजदात्मानमात्मना ॥४०
संभूतात्मैव आत्मासावण्डमध्याद्विनिःसृतः । आत्मनैवात्मनो ह्यण्डं सृष्ट्वा स विभुरादितः ॥४१
ब्रह्म नारायणाख्योऽसौ सृष्टिं कर्तुं समुद्यतः । ताभ्यां सोण्डकपालाभ्यां दिवं भूमिं च निर्ममे ॥४२
दिशश्चोपदिशश्चैव देवादीन्दानवांस्तथा । तिथिं पूर्वामिमां राजंश्चकारादौ विभुः स्वयम् ॥४३
तिथीनां प्रवरा यस्मादब्रह्मणा समुदाहृता । प्रतिपादितापरे पूर्वे प्रतिपत्तेन तूच्यते ॥४४
अस्मात्पदात्तु तिथयो यस्मात्त्वन्याः प्रकीर्तिताः । अस्यान्ते कथयिष्यामि उपवासविधिं परम् ॥४५
कार्त्तिक्यां माघसप्तम्यां वैशाखस्य युगादिषु । नियमोपवासं प्रथमं ग्राहयेत विधानवित्[1] ॥४६
यां तिथिं नियमं कर्तुं भक्त्या समनुगच्छति । तस्यां तिथौ विधानं यत्तन्निबोध जनाधिप ॥४७
यदा तु प्रतिपद्यां वै गृह्णीयान्नियमं नृप । चतुर्दश्यां कृताहारः संकल्पं परिकल्पयेत् ॥४८
अमावास्यां न भुञ्जीत त्रिकालं स्नानमाचरेत् । पवित्रो हि जपेन्नित्यं गायत्रीं शिरसा सह ॥४९
अर्चयित्वा प्रभाते तु गन्धमाल्यैर्द्विजोत्तमान् । शक्त्या क्षीरं प्रदद्यात्तु ब्रह्मा मे प्रीयतां प्रभुः ॥५०

के वृतान्त को बतला रहा हूँ ।३८-३९। (सृष्टि के पूर्व) यह समस्त जगन्मण्डल अंधकारमय था जिसका न तो कोई चिह्न शेष था न कोई अनुमान करने का साधन शेष था । भगवान् ब्रह्मा ने ऐसे जगत् में आकर अपने ही द्वारा इसका सर्वप्रथम आविर्भाव किया ।४०। उस विशाल अण्डरूप जगत् के मध्य से संभूतात्मा भगवान ब्रह्मा स्वयं निकल पड़े । सर्वप्रथम सर्वैश्वर्यशाली नारायण उपाधिधारी भगवान् विभु ने सृष्टि करने की कामना से उद्यत होकर उस विशाल अण्ड की सृष्टि भी स्वयं अपने ही से की थी ।४१। उन्होंने उसके दो कपालों (टुकड़ो) से पृथ्वी और भूलोक का निर्माण किया ।४२। हे राजन् ! उन्ही में से तदुपरान्त भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं दसों दिशाओं उपदिशाओं देवताओं एवं दानवों की रचना की । इन सब की रचना भगवान् ने सर्वप्रथम इसी पूर्व तिथि प्रतिपदा को ही की थी ।४३। यतः ब्रह्मा द्वारा यह सभी

ततो भुञ्जीत गोक्षीरमनेन विधिना नृप । एष एव विधिर्दृष्टः सर्वासु तिथिषु नृप ॥५१
संवत्सरगते काले व्रतमेतत्समाप्यते । व्रतांते यत्फलं तस्य तन्निबोध नराधिप ॥५२
विमुक्तपापः शुद्धात्मा दिव्यदेहस्य देहिनः । ब्रह्मा ददाति संतुष्टो विमानमतितेजसम् ॥
अव्याहतगतिं दिव्यं किन्नराप्सरसैर्युतम् ॥५३
रमित्वा सुचिरं तत्र दैवतैः सह देववत् । इह चागत्य विप्रत्वं दश जन्मान्यसौ लभेत् ॥५४
वेदवेदांगविद्यश्च दीर्घायुश्चैव सुप्रभः । भोगी धनपतिर्दाता जायतेऽसौ कृते युगे ॥५५
विश्वामित्रस्तु राजेन्द्र ब्राह्मणत्वजिगीषया । तपश्चचार विपुलं सन्तापाय दिवौकसाम् ॥
ब्राह्मणत्वं न लेभेऽसौ लेभे विद्वाननेकशः ॥५६
ततस्तु नियमात्तेषां तिथीनां प्रवरा तिथिः । उपोषिता बहुविधा ज्ञात्वा ब्रह्मप्रियां तिथिम् ॥५७
ततो ददौ ब्रह्मा विश्वामित्राय धीमते । इहैव तेन देहेन ब्राह्मणत्वं सुदुर्लभम् ॥५८
तिथीनां प्रवरा ह्येषा तिथीनामुत्तमा तिथिः । क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा ब्राह्मणत्वमवाप्नुयुः ॥५९
एवं तिथिरियं राजन्कामदा कञ्जजप्रिया । सरहस्या मया प्रोक्ता या नोक्ता यस्य कस्यचित् ॥६०
हैहयैस्तालजङ्घैश्च तुरुष्कैर्यवनैः शकैः । उपोषिता इहात्रैव ब्राह्मणत्वमभीप्सुभिः[1] ॥६१

है ।५१। इस प्रकार एक वर्ष समय व्यतीत होने पर यह नियम समाप्त होता है, नराधिप ! व्रत समाप्ति पर व्रती को जो पुण्य मिलता है उसे सुनिये ।५२। उस व्रती पुरुष के समस्त पाप इस नियम के पालन से छूट जाते है और उसकी आत्मा निर्मल हो जाती है उसे जन्मान्तर में दिव्यगुण सम्पन्न शरीर की प्राप्ति होती है । भगवान् ब्रह्मा परम सन्तुष्ट होकर उसे परम तेजोमय एक ऐसा दिव्य विमान समर्पित करते हैं जिसकी गति कहीं रुद्ध नहीं होती और चारों ओर से जिसे किन्नरों एवं अप्सराओं के समूह घेरे रहते हैं ।५३। उस पुनीत लोक में वह प्राणी देवताओं की तरह सभी सुखों एवं समृद्धियों का चिर काल तक सदुपयोग कर इस लोक में

इत्येषा परमा पुण्या शिवा पापहरा तथा । पठितोपासिता राजञ्छ्रद्धया च श्रुता[1] तथा ॥६२
माहात्म्यं चापि योप्यस्याः शृणुयान्मानवो नृप । ऋद्धिं वृद्धिं तथा कीर्तिं शिवं चाप्य दिवं व्रजेत् ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पविषये ब्रह्मणः पूजा

शतानीक उवाच

ब्रूहि मे विस्तराद्ब्रह्मन्प्रतिपत्कृत्यमादरात्[2] । ब्रह्मपूजाविधानं च पूजने यच्च वै फलम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वैकमना राजन्कथयाम्येष शान्तिदम् । पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥२
स्वयम्भूरभवद्देवः सुरज्येष्ठश्चतुर्मुखः । ससर्ज लोकान्देवांश्च भूतानि विविधानि च ॥३
कायेन मनसा वाचा जङ्गमस्थावराणि च । पिता यः सर्वदेवानां भूतानां च पितामहः ॥४
तस्मादेष सदा पूज्योः यतो लोकगुरुः परः । सृजत्येष जगत्कृत्स्नं पाति संहरते तथा ॥५

ब्राह्मणत्व की पदवी प्राप्ति के अभिलाषियों द्वारा उपोषित की गई है ।६१। यह परम पुण्य प्रदायिनी कल्याण प्रदा एवं पापहारिणी है । हे राजन् ! श्रद्धापूर्वक इस व्रत के नियमादि के सुनने पढ़ने एवं पालन करने से मनुष्य को उक्त फल की प्राप्ति होती है ।६२। हे नृप ! जो मनुष्य केवल इसके माहात्म्य को सुनता है उसे परम ऋद्धि-वृद्धि, कीर्ति कल्याण एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।६३

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में प्रतिपदा माहात्म्य वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६

रुद्रोऽस्य मनसो जातो विष्णुर्जातोऽस्य[1] वक्षसः । मुखेभ्यश्चतुरो[2] वेदा वेदाङ्गानि च कृत्स्नशः ॥६
देवाप्सरसगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः । पूजयन्ति सदा वीर विरिंचिं सुरनायकम् ॥७
सर्वो ब्रह्ममयो लोकः सर्वं ब्रह्मणि संस्थितम् । तस्मात्समर्चयेद्ब्रह्मान्य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥८
यो न पूजयते भक्त्या सुरज्येष्ठं[3] सुरेश्वरम् । न स नाकस्य राज्यस्य न च मोक्षस्य भाजनम् ॥९
यस्तु पूजयते भक्त्या विरिंचिं भुवनेश्वरम् । स नाकराज्यमोक्षेषु क्षिप्रं भवति भाजनम् ॥१०
तस्मात्सौम्यमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञया । अर्चयित्वा सदा देवमापन्नोऽपि नरो नृपः ॥११
वरं देहपरित्यागो वरं नरकसम्भवः । न त्वेवापूज्य भुञ्जन्ति[4] देव वै पद्मसंभवम् ॥१२
सदा पूजयते यस्तु वीर भक्त्या पितामहम् । मनुष्यचर्मणा नद्धः स वेधा नात्र संशयः ॥१३
न हि वेधोऽर्चनात्किंचित्पुण्यमभ्यधिकं भवेत् । इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयः सदा विधिः ॥१४
यो ब्रह्माणं द्वेष्टि मोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् । नरो नरकगामी स्यात्तस्य संभाषणादपि ॥१५
ब्रह्मणोर्चां प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नैर्विधानतः । यत्पुण्यं फलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥१६
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं लभेद्वेधः प्रतिष्ठया ॥१७
कञ्जजं स्थापयेद्यस्तु कृत्वा शालां मनोरमाम् । सर्वागमोदितं पुण्यं कोटिकोटिगुणं लभेत् ॥१८

रुद्र उनके मनसे तथा विष्णु उनके वक्षस्थल से उत्पन्न हुए है । उन्ही के मुखों से चारों वेद एवं समस्त वेदाङ्ग प्रादुर्भूत हुए हैं।६। हे वीर! सुरश्रेष्ठ उन भगवान् विरिंचि की देव अप्सरा, गन्धर्व, यक्ष, उरग एवं राक्षसगण सर्वदा पूजा करते हैं।७। सभी लोक ब्रह्ममय हैं सभी ब्रह्म में स्थित हैं इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है उसे ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये।८। सुरेश्वर सुरज्येष्ठ उन भगवानब्रह्मा की जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पूजा नहीं करते वह स्वर्ग राज्य और मोक्ष का भाजन नहीं होता ।९। जो मनुष्य भुवनेश्वर विरिंचि की भक्तिपूर्वक पूजा करता है वह शीघ्र ही स्वर्ग राज्य एवं मोक्ष का भाजन बनता है।१०।

मातृजान्पितृजांश्चैव यां चैवोद्वहते स्त्रियम् । कुलैर्कविंशमुत्तार्य ब्रह्मलोके महीयते ॥१९
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्प्रलये समुपस्थिते । ज्ञानयोगं समासाद्य स तत्रैव विमुच्यते ॥२०
अथ वा राज्यमाकाङ्क्षेज्जायते सम्भवान्तरे । सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥२१
त्रिसंध्यं यो जपेद्ब्रह्म कृत्वाष्टदलपंकजम् । पौर्णमास्यां प्रतिपदि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२२
अनेनैव स देहेन ब्रह्मा संतिष्ठते क्षितौ ।पापहा सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥२३
उद्धृत्य दिवि संस्थाप्य कुलानामेकविंशतिम् । तैः कुलैः सहितो नित्यं मोदते गोगतो[1] नृप ॥२४
अप्येकवारं यो भक्त्या पूजयेत्पद्म[2]संभवम् । पद्मस्थं मूर्तिमन्तं वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२५
पुण्यक्षयात्क्षितिं प्राप्य भवेत्क्षितिपतिर्महान् । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ब्राह्मणश्चापि जायते ॥२६
न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः । गच्छेद्ब्रह्मपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिपरात्मकान् ॥२७
मृद्दार्वैष्टकशैलैर्वा यः कुर्याद्ब्रह्मणो गृहम् । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२८
मृन्मयात्कोटिगुणितं फलं दार्विष्टकामये । इष्टकाद्द्विगुणं पुण्यं कृते शैलमये गृहे ॥२९
क्रीडमानोऽपि[3] यः कुर्याच्छालां वै ब्रह्मणो नृप । ब्रह्मलोके स लभते विमानं सर्वकामिकम् ॥३०

है वह सभी शास्त्रों में कहे गये पुण्यों से कोटिगुणित अधिकपुण्य फल की प्राप्ति करता है ।१८। वह महान् पुण्यशाली मनुष्य अपने मातृकुल, पितृकुल तथा जिस स्त्री के साथ विवाह करता है उस कुल की इक्कीस पीढ़ियों को तारता है और स्वयं ब्रह्म लोक में पूजित होता है ।१९। वहाँ पर विपुल भोगों का अनुभव कर प्रलय के अवसर पर ज्ञानयोग की सिद्धि प्राप्त कर वहीं पर मुक्त भी हो जाता है ।२०। अथवा यदि वह ब्रह्मलोक में राज्य प्राप्ति की कामना करता है जो जन्मान्तर में सातों द्वीपों तथा समुद्रों समेत सम्पूर्ण पृथिवी का एकछत्र स्वामी होता है ।२१। जो मनुष्य पूर्णिमा तथा प्रतिपदा तिथियों में अष्टदल कमल का निर्माण कर भगवान ब्रह्मा के नाम का तीनों संध्याओं में जप करता है उसके पुण्य-फल की कथा सुनो ।२२। उसके

पुष्पमालापरिक्षिप्तं किङ्किणीजालभूषितम् । दोलाविक्षेपसम्पन्नं घण्टाचामरभूषितम् ॥३१
मुक्तादामवितानेन शोभितं सूर्यसुप्रभम् । अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वकामसुखप्रदम् ॥३२
तत्रोषित्वा महाभोगी क्रीडमानः सदा सुरैः । पुनरागत्य लोकेस्मिन्राजा भवति धार्मिकः ॥३३
पश्यन्परिहरञ्जन्तून्मृदुपूर्वं महीपते । शनैः सम्मार्जनं कुर्वंश्चान्द्रायणफलं व्रजेत् ॥३४
वस्त्रपूतेन तोयेन यः कुर्यादुपलेपनम् । पश्यन्परिहरञ्जन्तूंश्चान्द्रायणफलं लभेत् ॥३५
नैरन्तर्येण यः कुर्यात्पक्षं सम्मार्जनार्चनम् । युगकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ॥३६
तस्यान्ते स चतुर्वेदः सुरूपः प्रियदर्शनः । आढ्यः सर्वगुणोपेतो राजा भवति धार्मिकः ॥३७
कपटेनापि यः कुर्याद्ब्रह्मशालां सुमानद । सम्मार्जनादि वै कर्म सोऽपि प्राप्नोति तत्फलम् ॥३८
तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकभयप्लुताः । न भवन्ति सुरश्रेष्ठे यावद्भूक्ता महीपते ॥३९
समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि न्यस्तं को न मुच्येत बन्धनात् ॥४०
खण्डस्फुटितसंस्कारं शालायां यः करोति वै । अरामावसथाद्येषु लभते मौक्तिकं फलम् ॥४१

ब्रह्मलोक में सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले विमान की प्राप्ति करता है ।३०। उसका वह सुन्दर विमान सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से चारों ओर घिरा हुआ छोटी-छोटी किंकिणियों से विभूषित झूलों एवं हिंडोले से संयुक्त घंटा तथा चामर से समन्वित रहता है ।३१। उसमें चारों ओर ऊपर मोतियों की लड़ियाँ झूलती रहती हैं उसकी शोभा सूर्य के समान तेजोमयी रहती है । अप्सराओं के समूह चारों ओर से उसमें आकीर्ण रहते हैं । और सब प्रकार की कामनाएँ एवं समस्त सुख प्रदान करती हैं ।३२। पश्चात् उस ब्रह्म लोक में रहकर देवताओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ वह महान् भोगी फिर इस लोक में आकर

नास्ति ब्रह्मसमो देवो[1] नास्ति ब्रह्मसमो गुरुः । नास्ति ब्रह्मसमं ज्ञानं नास्ति वेधः समं तपः ॥४२
प्रतिपद्यादिसर्वेषु दिवसेषूत्सवेषु च । पर्वकालेषु[2] पुण्येषु पौर्णमास्यां विशेषतः ॥४३
शंखभेर्यादिनिर्घोषैर्मङ्गल्यैर्गेयसंयुतैः । कुर्यान्नीराजनं देवे सुरज्येष्ठे[3] चतुर्मुखे ॥४४
यावत्पर्वाणि विधिना कुर्यान्नीराजनं नृप । तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥४५
स्नानकाले त्रिसंध्यं तु यः कुर्यान्नृत्यवादनम् । गीतं वा मुखवाद्यं वा तस्य पुण्य फलं शृणु ॥४६
यावन्त्यहानि कुरुते गेयनृत्यादिवादनम् । तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥४७
कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेन च । स्नापयेन्मंत्रपूतेन ब्राह्मं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥४८
कपिलापञ्चगव्येन दधिक्षीरघृतेन च । स्नानं[4] शतगुणं ज्ञेयमितरेषां नराधिप ॥४९
देवाग्निकार्यमुद्दिश्य कपिलामाहरेत्सदा । ब्रह्मक्षत्रविशश्चैव न शूद्रस्तु कदाचन ॥५०
कापिलं यः पिबेच्छूद्रो देवकार्यार्थनिर्मितम् । स पच्येत महाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥५१
वर्षकोटिसहस्रैस्तु[5] यत्पापं समुपार्जितम् । सुरज्येष्ठघृताभ्यंगाद्धेत्सर्वं न संशयः ॥५२
कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् । पितामहघृतस्नानं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥५३
घृतस्नानं प्रतिपदि सकृत्कृत्वा तु काञ्जजम् । कुलैर्कविंशमुत्तार्य विष्णुलोके महीयते ॥५४

तो कोई देव है न कोई गुरु है न कोई ज्ञान है न कोई तप है ।४२। प्रतिपदा आदि सभी तिथियों में सभी दिनों में उत्सव के दिन में पर्व के दिन में अथवा किसी भी पुण्य अवसर पर विशेष तथा पूर्णिमा तिथि को शंख भेरी आदि के मांगलिक शब्दों के बीच में सुमधुर संगीत एवं महान् समारोह कराते हुए सुरज्येष्ठ चतुर्मुख देव का नीराजन करना चाहिये ।४३-४४। हे राजन् ! मनुष्य इस प्रकार जितने पर्वों में विधिपूर्वक नीराजन करता है उतने सहस्र युगों तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।४५। स्नान के समय तीनों सन्ध्याओं में जो मनुष्य ब्रह्मा के मन्दिर में नृत्य एवं वाद्य का समारोह रचता है गीत गाता है अथवा

अयुतं यो गवां दद्याद्भक्त्या[1] वै वेदपारगे । वस्त्रहेमादियुक्तानां क्षीरस्नानेन यत्फलम् ॥५५
सकृदाज्येन पयसा विरिञ्चिं स्नपयेत्तु यः । गाङ्गेयेन स यानेन याति ब्रह्मसलोकताम् ॥५६
स्नाप्य दध्ना सकृद्वीर कञ्जजं विष्णुमाप्नुयात् । मधुना स्नापयित्वा तु वीरलोके महीयते ॥५७
स्नानभिक्षुरसेनेह यो विरिञ्चेः समाचरेत् । स याति लोकं सवितुस्तेजसा भासयन्नभः ॥५८
शुद्धोदकेन[2] यो भक्त्या स्नपयेत्पद्मसंभवम् । उत्सृज्य पापकलिलं स यात्येव सलोकताम् ॥५९
वस्त्रपूतेन तोयेन स्नपयेद्यः सकृद्विभुम् । स सर्वकालं तृप्तात्मा लोकवश्यत्वमाप्नुयात् ॥६०
सर्वौषधीभिर्यो भक्त्या स्नपयेत्पद्मसंभवम् । काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥६१
गन्धचन्दनतोयेन स्नपयेद्योम्बुजोद्भवम् । रुद्रलोकमवाप्नोति तेजसा हेमसन्निभः ॥६२
पाटलोत्पलपद्मानि करवीराणि सर्वदा । स्नानकाले प्रयोज्यानि स्थिराणि सुरभीणि च ॥६३
एषामेकतमं स्नानं भक्त्या कृत्वा तु वेधसि । विधूय पापकलिलं विधिलोके[3] महीयते ॥६४
कर्पूरागरुतोयेन स्नपयेद्यस्तु[4] कञ्जजम् । सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते ॥६५
गायत्रीशतजप्तेन विमलेनाम्भसा विभुम् । स्नपयित्वा सकृद्भक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥६६

पूजनीय होता है ।५४। दस सहस्र वस्त्र सुवर्णादि से अलंकृत गौएँ भक्तिपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणों को प्रदान करने से मनुष्य जो पुण्य प्राप्त करता है और (ब्रह्म को) क्षीर स्नान कराने से प्राप्त होता है ।५५। जो मनुष्य घृत एवं क्षीर द्वारा ब्रह्मा को केवल एकबार स्नान कराता है वह गांगेय यान द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है ।५६। हे वीर ! पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार दही द्वारा स्नान कराने से विष्णु को प्राप्त करता है और मधु द्वारा स्नान कराकर वीरलोक में भूषित होता है ।५७। जो ईख के रस द्वारा ब्रह्मा को स्नान कराता है वह अपने देदीप्यमान तेज से आकाशमण्डल को भासित करते हुए सूर्य के लोक

विभु शीताम्बुना स्नाप्य धारोष्णपयसा ततः । ततः पश्चाद् घृतस्नानं कृत्वा पापैर्विमुच्यते ॥६७
एतत्स्नानत्रयं कृत्वा पूजयित्वा तु भक्तितः । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥६८
मृत्कुम्भैस्ताम्रजैः कुम्भैः स्नानं शतगुणं[1] भवेत् । रौप्ये लक्षोत्तरं प्रोक्तं हैमैः कोटिगुणं भवेत् ॥६९
ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं परम् । स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नातमतः परम् ॥७०
वाचिकं मानसं पापं घृतस्नानेन देहिनाम् । क्षिणुते पद्मजो यस्मात्तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥७१
स्नपयित्वार्चयेद्भक्त्या यथा तच्छृणु भारत । शुचिवस्त्रधरः स्नातः कृतन्यासश्च भारत ॥७२
चर्तुहस्तं लिखेत्पद्मं चतुर्भागविभागितम् । मध्ये तस्य लिखेच्चक्रं दलैर्द्वादशभिश्चितम् ॥७३
सरोजानि ततोऽन्यस्य अक्षराणि समन्ततः । अक्षरं विहितं चान्यत्पत्रभागे प्रकीर्तितम् ॥७४
नानावर्णकसंयोगाल्लिखेच्चैवानुपूर्वशः । कृष्णोत्कटं तु मध्यं स्यात्पीतरक्तं तथा परम् ॥७५
सितं शुद्धं तु कर्त्तव्यं मध्यभागे तु वर्तुलम् । प्रभाकुण्डलकैर्बाह्यैर्वेष्टयेच्चक्रनायकम् ॥७६
एवमालिख्य यत्नेन मूलमन्त्रं ततो न्यसेत् । मूर्ध्नः पादतलं यावत्प्रणवं विन्यसेद्बुधः ॥७७
नादरूपं न्यसेत्तावद्यावच्छब्दस्य शून्यता । तत्कारं[2] विन्यसेन्मूर्ध्नि सकारं मुखमण्डले ॥७८

फिर धारोष्ण दुग्ध से तदनन्तर घृत से स्नान कराने वाला सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है ।६७। उन उर्पयुक्त तीनों स्नानों को कराकर फिर भक्तिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।६८। मिट्टी के कुंभो से अथवा ताम्र के कुम्भों से स्नान कराने पर शतगुना अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है । चाँदी के कुम्भ से लक्षगुणित तथा सुवर्ण के कुम्भ से कोटिगुणित फल प्राप्त होता है ।६९। भगवान् ब्रह्मा का यों तो दर्शन ही परमपुण्यप्रद है किन्तु दर्शन से अधिक पुण्य स्पर्श करने का है । उस स्पर्श से भी अधिक पुण्य पूजन करने का है और उससे भी अधिक पुण्यप्रद घृत-स्नान कहा गया है ।७०। शरीरधारियों के वाचिक एवं मानसिक पापों को भगवान् पद्मसम्भव घृत स्नान से नष्ट कर

विकारं कण्ठदेशे तु तुकारं सर्वसंधिषु[1] । वकारं हृदि मध्ये तु रेकारं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७९
णकारं दक्षिणे कुक्षौ यकारं वामसंज्ञके । भकारं कटिनाभिस्थं गोकारं जानुपर्वसु ॥८०
देकारं जंघयोर्न्यस्य वकारं पादपद्मयोः । स्यकारमङ्गुष्ठयोर्न्यस्य धीकारं चोरसि न्यसेत् ॥८१
मकारं जानुदेशे तु हिकारं गुह्यमाश्रितम् । धिकारं हृदये न्यस्य योकारं चौष्ठयोर्न्यसेत् ॥८२
नकारं नासिकाग्रे तु प्रकारं नेत्रमाश्रितम् । चोकारं तु भ्रुवोर्मध्ये दकारं प्राणमाश्रितम् ॥८३
याकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि तकारं केशमाश्रितम् । न्यासं कृत्वात्मनो देहे देवे कुर्यात्तथा नृप ॥
सर्वोपचारसम्पन्नं कृत्वा सम्यङ् निरीक्षयेत् ॥८४
कुंकुमागुरुकर्पूरचन्दनेन विमिश्रितम् । गन्धतोयमुपस्कृत्य गायत्र्या प्रणवेन च ॥
प्रोक्षयेत्सर्वद्रव्याणि पश्चादर्चनमाचरेत् ॥८५
चक्रग्रन्थिषु सर्वासु प्रणवं विनिवेशयेत्[2] । भूयः प्लुतं समुच्चार्य प्रणवं सर्वतोमुखम् ॥८६
विन्यसेत्पद्ममध्ये तु पीठनिष्पत्तिहेतवे । आसने पृथिवी ज्ञेया सर्वसत्त्वधरा मता ॥८७
ह्रस्वोङ्कारे मता सा तु दीर्घोङ्कारे तु देवराट् । प्लुतस्तु व्यापयेद्भावं मोक्षदं चामृतात्मकम् ॥८८

करे ।७८। कण्ठ प्रदेश में 'वि' का न्यास किया जाता है । सर्वसन्धि प्रदेशों अथवा अंग सन्धि प्रदेशों में 'तु' कार का न्यास करना चाहिये । हृदय के मध्य में 'व' कार का न्यास किया जाता है । दोनों पार्श्वप्रदेशों में 'रे' कार का न्यास करना चाहिये ।७९। दाहिनी कुक्षिमें 'ण' कार का न्यास होता है । इसी प्रकार वाम कुक्षि में 'य' कार का न्यास करके कटि एवं नाभि प्रदेश में 'भ' कार का न्यास करना चाहिए । दोनों घुटनों के पोरों पर 'गों' कार का न्यास करना चाहिये ।८०। इसी प्रकार दोनों जंघाओ में 'दकार' का न्यास कर दोनों चरण कमलों में 'व' कार का न्यास किया जाना चाहिए । दोनों अँगूठों में 'स्या' कार का न्यास कर वक्षस्थल में 'धी' आदि का न्यास करना चाहिए ।८१। जानु प्रदेश में 'म' कार का न्यास कर गुह्य प्रदेश में 'हि' कार का न्यास

आवाहनं ततः कुर्यादक्षरेण परेण[1] तु ॥८९
यत्नस्थो न निवर्तेत योगी प्राणपरायणः । ततो विभावयेद्देवं पद्मस्थं चतुराननम् ॥९०
आवाह्य तेजोरूपं तु न्यसेन्मन्त्रवरांस्ततः । संभाव्य विधिवद्भक्त्या पश्चाच्चार्चनमाचरेत् ॥९१
स्रष्टारं सर्वजगतां विष्णुरुद्रविधानगम् । गायत्रीमुच्चरन्मन्त्रं सर्वकर्माणि कारयेत् ॥९२
गन्धपुष्पादिसंभारान्क्रमात्सर्वान्प्रकल्पयेत् । खंडलड्डुकश्रीवेष्टकासाराशोकवर्तिकाः ॥९३
पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरम् । फलानि चैव पक्वानि लग्नखण्डगुडानि च ॥९४
स्वस्तिकोल्लोपिकादुग्धतिलावेष्टतिलाढिकाः । एवमादीनि सर्वाणि दापयेच्छक्तितो नृप ॥९५
अन्यांश्च विविधान्दद्यात्पूपानि विविधानि च । पूजयेच्चापि विधिना येन तं ते ब्रवीम्यहम् ॥९६
मूलमन्त्रेण देवस्य ततो देहं विभावयेत् । आवाहयेत्ततोऽनन्तं धारयन्तं वचः सदा ॥९७
प्राणायामत्रयं कृत्वा देहसंशोधनाय वै । ध्यायेद्विष्णुं ततो देवं न्यसेत्पद्मोदरोद्भवम् ॥९८
ध्यात्वानन्तं ततो रुद्रं पद्मकिंजल्कमध्यगम् । पूजयेन्मूलमन्त्रेण पद्मोदरभवं नृप ॥९९
एवं त्रिदेवता रूढं पद्ममध्येऽम्बुजोद्भवम् । ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यं धर्मं संपूजयेद्बुधः ॥१००
ऋग्वेदं तु यजुर्वेदं सामवेदं च पूजयेत् ।

व्याप्त माना गया है ।८८। प्राणवायु को वश में करने वाले योगी को यत्न पूर्वक साधनों में निरत रहकर
निवृत्त न होना चाहिए । तदनन्तर परम अक्षर का उच्चारण करते हुए देव का आवाहन करना
चाहिए ।८९। इस प्रकार तेजोरूप देव का आवाहन करने के उपरान्त श्रेष्ठ मंत्रों का न्यास करना
चाहिए । तदनन्तर पद्मदल पर अवस्थित उन भगवान् चतुरानन का ध्यान करे ।९०। जो सम्पूर्ण
चराचर जगत् के स्रष्टा एवं विष्णु तथा रुद्र के विधान को अतिक्रान्त करने वाले हैं । इस प्रकार भक्ति के
साथ विधिपूर्वक भगवान् को संभावित करने के बाद उनकी पूजा करनी चाहिए ।९१। सुगन्धित द्रव्य
पुष्पमाला आदि समस्त पूजा की सामग्रियों को क्रमशः एकत्रित करके ब्रह्मदेव की पूजा करनी चाहिए ।
... चाहिए ।९२। पूजा के द्रव्य मुख्यतया

ईशानादिक्रमाद्राजन्विदिशासु समन्ततः[१] । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ॥१०१
ज्योतिषं च महाबाहो उपवेदाश्च कृत्स्नशः । इतिहासपुराणानि यथायोग्यं यथाक्रमम् ॥१०२
शिक्षा कल्पो व्याकरणं देवस्य पुरतः सदा । कल्पादयस्ततश्चान्ये दिशासु विदिशासु च ॥१०३
महाव्याहृतयः सर्वाः प्रणवेन समन्विताः । पूर्वादिक्रमयोगेन पूजयेद्विधिना नृप ॥१०४
शक्तयो ब्रह्मणस्त्वेता लोकरूपा व्यवस्थिताः । पूजनीयाः प्रयत्नेन मन्त्ररूपाः स्थिताः स्वयम् ॥१०५
अरकान्तरसंस्थांश्च[२] षट् समुद्रान्समर्चयेत् । नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव राशयश्च[३] विशेषतः ॥
पूज्याः सर्वे यथान्यायं सुराग्रेषु व्यवस्थिताः ॥१०६
नागाश्च गरुडश्चैव पूजनीयस्तथाग्रतः । देवता ऋषयश्चैव सहिताः कुलपर्वताः ॥
तत्तेजोनिलयाः सर्वे पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥१०७
आचम्य विधिवत्पूर्वं मन्त्रपूतेन वारिणा । हृदयादीन्यसेदङ्गान्हृदयादिषु कृत्स्नशः ॥१०८
शिखा नेत्रं तथा चर्म अस्त्रं[४] च भरतर्षभ । महेन्द्रादिदिशश्चैताः पूजयेद्विधिवन्नृप ॥१०९
हृदयं पुरतः पूज्यं शिरो देवस्य पृष्ठतः । पूर्वं संपूजयेद्देवं मूलमंत्रेण कृत्स्नशः ॥११०
विसर्जयेद्दर्शयित्वा मुद्रां तु भरतर्षभ । अङ्कुशं[५] नरशार्दूल ह्याह्वाने कंजमादिशेत् ॥१११

ईशान कोण से प्रारम्भ कर सभी दिशाओं एवं कोणों में सभी ओर शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष एवं अन्यान्य उपवेदों की एवं इतिहास पुराणादि की यथायोग्य क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।१०१-१०२। इन सबों में शिक्षा, कल्प एवं व्याकरण इन तीनों को देव के सम्मुख रखना चाहिए, अन्य कल्पादिकों को अन्यान्य दिशाओं एवं विदिशाओं में निर्दिष्ट करना चाहिए ।१०३। हे राजन् ! प्रणव के साथ सम्पूर्ण महाव्याहृतियों की पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।१०४। ये

यस्त्वेवं पूजयेद्देवं प्रतिपन्नित्यमेव च । उपोष्य पञ्चदश्यां तु स याति परमं[1] पदम् ॥११२

सुमन्तुरुवाच

आपो हिष्ठेति मंत्रोऽयं हृदयं परिकीर्तितम् । ऋतं सत्यं शिखा प्रोक्ता उदुत्यं नेत्रमादिशेत् ॥११३
चित्रं देवानां मस्तमिति सर्वलोकेषु विश्रुतम् । वर्मणा ते च्छादयामि कवचं समुदाहृतम् ॥११४
भूर्भुवः स्वरिति तथा शिरसे परिकीर्तितम् । गायत्रीमूलतन्त्रस्तु साधकः सर्वकर्मणाम् ॥११५
गायत्र्या पूजयेद्देवमोंकारेणाभिमंत्रितम् । प्रणवेनापरान्सर्वानृग्वेदादीन्प्रपूजयेत् ॥११६
आह्वाने पूजने वीर विसर्गे ब्रह्मणस्तथा । गायत्री परमो मंत्रो वेदमाता विभाविनी ॥११७
गायत्र्यक्षरतत्त्वैस्तु पूजयेद्यस्तु देवताम् । स गच्छेद्ब्रह्मणः स्थानं दुर्लभं यद्दुरासदम् ॥११८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पे ब्रह्मणोऽर्चनविधिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७।

अथाष्टादशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पसमाप्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पौर्णमास्युपवासं तु कृत्वा भक्त्या नराधिप । अनेन विधिना यस्तु विरिञ्चिं पूजयेन्नरः ॥१

प्रतिपदा तिथि को उक्त प्रकार से देव की पूजा करता है वह परम पद को प्राप्त करता है ।११२

सुमन्तु बोले— 'आपोहिष्ठा' यह मंत्र हृदय न्यास के लिए कहा गया है०, 'ऋतं च सत्यं च.....इत्यादि' मन्त्र शिखा के लिए प्रयुक्त है । 'उदुत्यं.....इत्यादि' मंत्र नेत्र के लिए बतलाया गया है ।११३। 'चित्रं देवानाम्.....इत्यादि' मंत्र मस्तक के लिए सब लोकों में प्रसिद्ध माना गया है । 'वर्मणा

प्रतिपद्यां महाबाहो स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । ऋग्भिर्विशेषतो[1] देवी विरिञ्चेर्वास्तुदेवताः ॥२
कार्त्तिके मासि देवस्य रथयात्रा प्रकीर्तिता । यां कृत्वा मानवो भक्त्या याति ब्रह्मसलोकताम् ॥३
कार्तिके मासि राजेन्द्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम् । मार्गेण चर्मणा सार्धं सावित्र्या च परन्तप ॥४
भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यैः समन्वितम् । स्थापयेद्भ्रामयित्वा तु सलोकं नगरं नृप ॥५
ब्राह्मणं भोजयित्वाग्रे शांडिलेयं प्रपूज्य च । आरोपयेद्रथे देवं पुण्यवादित्रनिस्वनैः ॥६
रथाग्रे शांडिलीपुत्रं पूजयित्वा विधानतः । ब्राह्मणान्वाचयित्वा च कृत्वा पुण्याहमंगलम् ॥७
देवमारोपयित्वा तु रथे कुर्यात्प्रजागरम् । नानाविधैः प्रेक्षणकैर्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः ॥८
कृत्वा प्रजागरं ह्येवं प्रभाते ब्राह्मणं नृप । भोजयित्वा यथाशक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥९
पूजयित्वा जनं[2] वीर वज्त्रेण विधिवन्नृप । बीजेन च महाबाहो पयसा पायसेन च ॥१०
ब्राह्मणान्वाचयित्वा च च्छांदेन विधिना नृप । कृत्वा पुण्याहशब्दं च रथं च भ्रामयेत्पुरे ॥११
चतुर्वेदविदैर्विप्रैर्भ्रामयेद्ब्रह्मणो रथम् । बह्वृचाथर्वणोच्चारैश्छन्दो गाध्वर्युभिस्तथा ॥१२
भ्रामयेद्देवदेवस्य सुरज्येष्ठस्य तं रथम् । प्रदक्षिणं पुर सर्वं मार्गेण सुसमेन तु ॥१३
न वोढव्यो रथो वीर शूद्रेण शुभमिच्छता । नारुहेत रथं प्राज्ञो मुक्त्वैकं भोजकं नृप ॥१४

प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मा की पूजा करता है, हे महाबाहु ! वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है ।१। ऋचाओं द्वारा विरञ्चि की देवी की पूजाकरनी चाहिए जो उनकी वास्तु देवता मानी गई हैं ।२। कार्तिक मास में देव की रथयात्रा की प्रशंसा की गई है । जिसको सविधि सम्पन्न करने वाला भक्तिमान् पुरुष ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करता है ।३। हे राजेन्द्र ! कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को सावित्री के साथ मृगचर्म पर भगवान् ब्रह्मा को स्थापित कर अनेक प्रकार के वाद्यो के साथ-साथ रथ को नगर में सर्वत्र घुमावें । हे राजन् ! इस तरह नगर में सर्वत्र घुमा लेने के बाद रथ को एक स्थल पर स्थापित कर दे ।४-५। आगे शाण्डिलेय ब्राह्मण को विधिवत् पूजित कर भोजन करवाये । तदनन्तर उस शाण्डिली पुत्र ब्राह्मण को विधिपूर्वक पूजित कर

ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे सावित्रीं स्थापयेन्नृप । भोजको वामपार्श्वेतु पुरतः कञ्जजं न्यसेत् ॥१५
एवं तूर्यनिनादैस्तु शंखशब्दैश्च पुष्कलैः । भ्रामयित्वा रथं राजन्पुरं सर्वं प्रदक्षिणम् ॥
स्वस्थाने स्थापयेद्भूयः कृत्वा नीराजनं बुधः ॥१६
य एवं कुरुते यात्रां भक्त्या यश्चापि पश्यति । रथं चाकर्षते यस्तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१७
कार्तिके मास्यमावास्यां यस्तु दीपप्रदीपनम् । शालायां ब्रह्मणः कुर्यात्स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१८
प्रतिपदि ब्राह्मणांश्चापि गुडमिश्रैः प्रदीपकैः । वासोभिरहतैश्चापि स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१९
गंधैपुष्पैर्नवैर्वस्त्रैरात्मानं[1] पूजयेच्च यः । तस्यां प्रतिपदायां तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥२०
महापुण्या तिथिरियं बलिराज्यप्रवर्तनी । ब्रह्मणः सुप्रिया नित्यं बालेया परिकीर्तिता ॥२१
ब्राह्मणान्पूजयित्वास्यामात्मानं च विशेषतः । स याति परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः ॥२२
चैत्रे मासि महाबाहो पुण्या प्रतिपदा परा । तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तम ।२३
न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप । भवन्ति कुरुशार्दूल तस्मात्स्नानं प्रवर्तयेत् ॥२४
दिव्यं नीराजनं तद्धि सर्वरोगविनाशनम् । गोमहिष्यादि यत्किंचित्तत्सर्वं भूषयेन्नृप ॥२५

बैठाना भी नहीं चाहिये ।१४। हे राजन् ! भगवान् ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व में सावित्री को स्थापित करना चाहिये । भोजक ब्राह्मण को वाम पार्श्व में रखना चाहिये । सम्मुख भाग में पद्मोद्भव को स्थापित करना चाहिये ।१५। तुरुही आदि सुन्दर वाद्यों की एवं शंखों की तुमुल कराते हुए रथ को पुट की प्रदक्षिणा क्रम से घुमाते हुए अपने स्थान पर लाकर पुनः स्थापित कर देना चाहिये ।१६। जो मनुष्य इस प्रकार की रथयात्रा सम्पन्न कराना है तथा ऐसा रथयात्रा के उत्सव समारोह को भक्तिपूर्वक देखता है जो उक्त रथ को खींचता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है ।१७। कार्तिक मास की अमावास्या तिथि को जो मनुष्य ब्रह्मा के आयतन में दीपदान करता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है ।१८। इसी प्रकार कार्तिक

तैलशस्त्रादिभिर्वस्त्रस्तोरणाधस्ततो नयेत् । ब्राह्मणानां तथा भोज्यं कुर्यात्कुरुकुलोद्वह ॥२६
तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन । कार्त्तिकेश्वयुजे मासि चैत्रे मासे च भारत ॥२७
स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिके या तिथिर्नृप । बलिराज्याप्तिसुखदापांशुलाशुभनाशिनी ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पसमाप्तिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

शर्यात्याख्याने पुष्पद्वितीया वर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

द्वितीयायां तु राजेन्द्र अश्विनौ सोमपीतिनौ । च्यवनेन कृतौ यज्ञे मिषतो मघवस्य[1] च ॥१

शतानीक उवाच

कथमिन्द्रस्य मिषतः कृतौ तौ सोमपीतिनौ । च्यवनेन हि देवानां पश्यतां तद्वदस्व मे ॥२
अहो महत्तपस्तस्य च्यवनस्य महात्मनः । यदिन्द्रस्य बलादेव देवत्वं प्रापितावुभौ ॥३

शस्त्र तथा वस्त्रादि से भली भाँति विभूषित करे फिर उन्हें तोरण के नीचे से निकाले । हे कुरुकुलोत्पन्न ! उस अवसर पर ब्राह्मणों को विधिवत् भोजन कराना चाहिए ।२५-२६। हे कुरुनन्दन ! ये उपर्युक्त तीन आश्विन कार्तिक एवं चैत्र की प्रतिपदा तिथियाँ सब में परम श्रेष्ठ मानी गई हैं किन्तु हे भारत ! इनमें से कार्तिक की जो तिथि है वह स्नान तथा दान में सौ गुनी अधिक फल देने वाली है । वह परम पुण्यदायिनी कार्तिक की प्रतिपदा बलि को राज्य प्राप्त कराने वाली सुखदायिनी पशु कल्याणकारिणी तथा अशुभ

सुमन्तुरुवाच

पुरातनयुगे सन्धौ पश्चिमेऽथ नराधिप । च्यवनो योगमास्थाय गंगाकूलेऽवसच्चिरम् ॥४
तत्र शर्यातिरायातः स्नातुमन्तः[१] पुरैः सह । स्नात्वाभ्यर्च्य [२]पितॄन्देवान्गमनायोपचक्रमे ॥५
तत्र मूढं जनपदमपश्यत्पथि चेष्टनम् । विण्मूत्रोत्सर्गसंरुद्धं ज्योतिराक्षिप्तनिष्क्रियम् ॥
भ्रमन्तं तत्रतत्रैव समीक्ष्य स बलं नृपः ॥६
उवाच [३]दुर्मना राजा अमात्यान्स्वान्पुरोगमान् । च्यवनस्याश्रमोऽयं हि नापराद्धं तु केनचित् ॥७
न चोवाच यदा कश्चित्तस्य राज्ञस्तु पृच्छतः । तदा सुता सुकन्यास्य प्रोवाच पितरं वचः ॥८
मया दृष्टं तु यत्तात सखिभिः सह कौतुकम् । तत्ते वच्मि निबोध त्वं शृणु तात महाद्भुतम् ॥९
शिञ्जितारावबहुलाः काञ्चीनूपुरमेखलाः । गायन्त्यो विलपन्त्यश्च क्रीडन्त्यश्चात्र कानने ॥१०
कोकिलध्वनिमश्रौषं व्यक्ताव्यक्ताक्षरं कृशम् । सुकन्ये ह्येहिह्येहीति वल्मीकाद्वचमुद्गिरन् ॥११
तत्र गत्वाद्भुतं तात पश्यामः किल पावकौ । दीपाविवाचलशिखौ भूयः कन्या उवाच ह ॥१२
मया च कौतुकात्तात किमेतदित्यबुद्धितः । सूदितौ दर्भसूच्यग्रैस्तत्तेजः समुपारमत् ॥१३
तच्छ्रुत्वा नृपतिस्त्रस्तस्तूर्णं तद्वनमागमत् । यत्रास्ते भार्गवः कष्टं वल्मीकान्तर्गतो मुनिः ॥१४

सुमन्तु ने कहा—नराधिप ! प्राचीन युग की अन्तिम सन्धि बेला में च्यवन योगाभ्यासी होकर चिरकाल तक गङ्गा-तट पर निवास करते थे ।४। वहीं पर राजा शर्याति भी अपनी स्त्रियों के साथ स्नान करने के लिए आये थे । स्नान करने के उपरान्त उन्होंने पितरों एवं देवताओं की अर्चना की और फिर राजधानी को लौटने का उपक्रम किया ।५। इसी अवसर पर राजा ने मार्ग में एक जनपद (स्थान) देखा और यह भी देखा कि सारी सेना चेतनाहीन हो गयी है, थोड़ी सचेष्टता उनमें शेष है । सब निरिन्द्रिय-से

गत्वा स तत्र प्रोवाच प्रणिपत्य द्विजोत्तमम् । अपराद्धं मया[1] देव तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥१५
स तं प्रोवाच नृपतिं मया ज्ञातं नराधिप । सुकन्यां मे प्रयच्छस्व निवेशार्थी[2] ह्यहं नृप ॥
अनुक्रमन्सुकन्यां तु दत्त्वा राजन्सुखी भव ॥१६
इत्युक्तः प्रददौ राजा सुकन्यामविचारयन् । ततः स्वपुरमागम्य अवसत्सुचिरं सुखी ॥१७
सुकन्यापि पतिं लब्ध्वा सुप्रीताराधयत्तदा । राज्यश्रियं परित्यज्य वल्कलाजिनधारिणी ॥१८
गते बहुतिथे काले वसन्ते समुपस्थिते । तपोद्योतितसर्वाङ्गीं रूपोदार्यगुणान्विताम् ॥
स्नातां स्वभार्यां च्यवन उवाच मधुराक्षरम् ॥१९
एह्येहि भद्रे भद्रं ते शयनीयं समाश्रय । अपत्यं जनयस्वाद्य कुलद्वयविवर्धनम् ॥२०
एवमुक्ता तु सा कन्या प्राञ्जलिः पतिमब्रवीत् । [3]नार्हस्यद्य सुकल्याण सङ्गमं स्थण्डिलेऽसमे ॥२१
मम प्रियं कुरुष्वाद्य ततो मामाह्वयस्व च । पितृगेहे यथातिष्ठं शयनीये सुसंस्कृते ॥२२
बहुगैरिकवर्णाद्यैः श्वेतपीतारुणाकुले । वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैस्तथा त्वमपि तत्कुरु ॥२३

कष्ट के साथ समासीन थे ।१४। वहाँ जाकर राजा ने द्विजवर्य च्यवन को प्रणाम कर निवेदन किया । देव ! मैंने महान् अपराध किया, उसे कृपया क्षमा कीजिये, आपको मेरा नमस्कार है ।१५। च्यवन ने राजा शर्याति से कहा—'राजन् ! मैं आपका अपराध जानता हूँ । तुम सुकन्या को मुझे दे दो, क्योंकि मैं अब गृह पर रहना चाहता हूँ । हे राजन् ! इस अपराध की शान्ति के लिए तुम सुकन्या को देकर सुख प्राप्त करो ।१६। च्यवन के इस प्रकार कहने पर राजा शर्याति ने बिना विचार किये ही सुकन्या को उन्हें समर्पित कर दिया और उसके बाद अपने पुर को वापस लौटकर चिरकाल तक सुखपूर्वक निवास किया ।१७। उधर सुकन्या ने भी पति रूप में च्यवन की प्राप्त कर परम प्रसन्नतापूर्वक उनकी आराधना की । उसने

आत्मानं वयसोपेतं रूपवन्तं सुवर्चसम् । वस्त्रालङ्कारगन्धाढ्यं पश्येयं येन सादरम् ।।२४
सुकन्याया वचः श्रुत्वा च्यवनः प्राह दुर्मनाः । न मेऽस्ति वित्तं कल्याणि पितुस्तेऽस्ति यथा वने ।।२५
स कथं भूषयाम्यद्य सुरूपश्च कथं वद । प्रोवाच सा पतिं भूयः प्रहसन्ती कृताञ्जलिः ।।
वित्तं ददावैलविलो रूपं वैरोचनोऽददत् ।।२६
च्यवनः प्राह भार्यां तां न[1] करिष्ये तपोव्ययम् । एवमुक्त्वा तपश्चोग्रं तताप सुचिरं तदा ।।२७
अथ तत्रागतौ वीरावश्विनौ कालपर्ययात् । दृष्टवन्तौ सुकन्यां तौ दीप्त्या वै देवतामिव ।।२८
उपगम्योचतुस्तां तौ का त्वं सुन्दरि रूपिणी । किमर्थमिह एका त्वं तिष्ठसे कस्तवाश्रयः ।।२९
सा तावुवाच तन्वङ्गी[2] शर्यातिदुहिता ह्यहम् । भर्ता च च्यवनो मह्यं कौ च वां मे तथोच्यताम् ।।३०
ऊचतुश्चाश्विनौ देवावावां विद्धि नृपात्मजे । किं करिष्यसि तेन त्वं जीर्णेन च कृशेन च ।।
आवयोर्वृणु भर्तारमेकमेव यमिच्छसि ।।३१

रमणीक शय्या पर अपने ही समान अवस्था वाले, सुरूपवान्, परमतेजस्वी, विविध प्रकार के वस्त्रों तथा अलङ्कारों तथा सुगन्धित पदार्थों से सुशोभित आपको मैं आदरपूर्वक देखूँ ।२३-२४। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर च्यवन ने व्यथित मन से कहा—'हे कल्याणि ! यहाँ वन में मेरे पास तो ऐसा धन है ही नहीं जैसा तुम्हारे पिता के पास धन है ।२५। पर उस धन से आज वन्य प्रदेश में वे सामग्रियाँ किस प्रकार प्रस्तुत हो सकती हैं। तो फिर उन सब सामग्रियों से मैं शय्या को तथा अपने को कैसे सजा सकता हूँ । यही नहीं मैं सुरूप भी कैसे हो सकता हूँ, कोई उपाय भी तो बतलाओ ।' पति के इस प्रकार उत्तर देने पर सुकन्या ने हँसते हुए अञ्जलि बाँधकर पति से पुनः निवेदन किया—'आराध्यचरण ! पूर्वकाल में ऐलविल ने अपने

सा त्वब्रवीच्च मा मैवं वक्तुमर्हौ दिवौकसौ । भर्तारमनुरक्ताङ्गी यथा स्वाहा विभावसोः ॥३२

अश्विनावूचतुः

आयातु च विशत्वद्य च्यवनो वैष्णवीजलम् । ततो नौ मध्यगं ह्येकं वृणीष्वान्यं यमिच्छसि ॥३३
तावब्रूतां सुकन्यां तु गत्वा पृच्छ स्वकं पतिम् । तं च पृष्ट्वा पुनश्चात्रागच्छ नौ सन्निधौ पुनः ॥३४
आवामत्रैव तिष्ठावो यावदागमनं तव । सा गत्वा प्राह भर्तारमश्विनावेवमूचतुः[1] ॥३५
रूपवन्तं च भर्त्तारं करिष्यावो यमिच्छसि । अथ मध्यगतं ह्येकं भर्तृत्वेन वरिष्यसि ॥३६
एवमस्त्विति तां प्राह भार्यां च्यवनस्त्वरन् । सा तं गृह्य जगामाशु यत्र तौ भिषजावुभौ ॥३७
सा तावुवाच च्यवनो यथोक्तं भवतोर्वचः । कुरुतं ह्यश्विनौ क्षिप्रं सुकन्या चेप्सितं [2]वृणोत् ॥३८
तौ तं सङ्गृह्य गङ्गायां प्रविष्टौ मुनिना सह । मुहूर्तात्तु समुत्तिष्ठन्रूपतश्च श्रिया वृताः ॥३९
शोभन्ते स्म महाबाहौ कमुद्भिद्य तपोयुताः । कल्पादौ कलशे यद्वत्कञ्जाक्ष व्योम वेधसः ॥

सुकन्या ने कहा, 'महाराज !' आप लोगों को देवता होकर ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये । मैं अपने पतिदेव के चरणों में उसी प्रकार अनुरक्त हूँ जैसे स्वाहा विभावसु (अग्नि) में ।३२

दोनों अश्विनी कुमारों ने कहा—सुकन्ये ! प्रथमतः यह होना चाहिये कि च्यवन यहाँ आवें और इस वैष्णवी (गङ्गा) के जल में प्रवेश करें । फिर हम लोगों में से तुम किसी एक को जिसे चाहो पसन्द कर लो ।३३। पुनः उन दोनों ने सुकन्या से कहा—'तुम जाकर ऐसी बात अपने पति से पूछो, और उनसे पूछकर फिर यहाँ आकर हम लोगों को बतला जाओ ।३४। तब

उदकादुत्थितास्तस्मात्सर्वे ते समरूपकाः ॥४०
सुकन्या तु ततो दृष्ट्वा भर्त्तारं देवरूपिणम् । हर्षेण महताविष्टा न च तं वेद भारत ॥४१
समकायाः समवयः समरूपाः समश्रियः । वस्त्रालङ्कारसदृशान्दृष्ट्वा चिन्तां गता चिरम् ॥४२
सा चिन्तयित्वा सुचिरं वैद्यदेवावुवाच ह । बीभत्सोऽपि मया भर्ता परित्यक्तो न कर्हिचित् ॥४३
भवद्भिरात्मसदृशं कथं[1] त्यक्त्वा वृणे परम् । तस्मात्तमेव भर्तारं प्रयच्छध्वं दिवौकसः ॥४४
तया सबहुमानं तौ प्राञ्जल्या प्रार्थितौ तदा । देवचिह्नानि स्वान्येव धारयन्तौ सुपूजितौ ॥४५
सुकन्या निपुणं तौ तु सुनिरीक्ष्य च विह्वला । न रजो न निमेषो वै न स्पृशेते धरां पदे ॥४६
अयं च सरजा म्लानो भूमिमाश्रित्य तिष्ठति । निमेषं चैव तस्यैवं ज्ञात्वा वै च्यवनो वृतः ॥४७
च्यवने वृते सुकन्यया पुष्पवृष्टिः पपात ह । देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यन्त अनेकशः ॥४८
ततस्तु च्यवनस्तुष्टो दिव्यरूपधरस्तदा । उवाच तौ तु सुप्रीत अश्विनौ किं करोमि वाम् ॥४९
भार्या दत्ता कृतं रूपं देवानामपि दुर्लभम् । उपकारं वरिष्ठं यो न करोत्युपकारिणः ॥५०

एक ही समान रूप वाले होकर जल से बाहर निकले ।४०। भरत कुलोत्पन्न राजन् ! सुकन्या देव रूप में उपस्थित अपने पति को देखकर परम प्रसन्न तो हुई किन्तु पहचान नहीं सकी ।४१। क्योंकि वे सब समान शरीर वाले, समान अवस्था वाले तथा रूपवाले और समान कान्तिवाले थे । यही नहीं, वे वस्त्र अलंकार आदि भी एक ही समान धारण किये हुये थे । इस प्रकार उन तीनों को एक स्थिति में देखकर सुकन्या बहुत देर तक परम चिन्तित रही ।४२। और बहुत देर तक सोचने विचारने के बाद (जब उसे कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ा) तब अश्विनी कुमारों से बोली—'सुरवैद्यों ! आप लोग यह भली भाँति जानते हैं कि मैंने अपने वीभत्स एवं रुग्ण पति का भी कभी परित्याग नहीं किया ।४३। तो फिर आपके समान सुन्दर आकृति एवं वय वाले उसी पति को छोड़ दूसरे को कैसे वरण कर सकती हूँ ? इसलिए आप लोग

एकविंशत्सगच्छेच्च नरकाणि क्रमेण वै । तस्मादहं वरिष्ठं वै करिष्येऽहममानुषम् ॥५१
उपकारं भवद्भ्यां तु प्रीतः कुर्यां सुनिश्चितम् । यज्ञभागफलं दद्यां यद्देवेष्वपि दुर्लभम् ॥५२
एवमुक्त्वा तु देवेशौ विससर्ज महामुनिः । आजगामाश्रमं पुण्यं सहभार्यो मुदान्वितः ॥५३
अथ शुश्राव शर्यातिश्च्यवनं देवरूपिणम् । जगाम च महातेजा द्रष्टुं मुनिवरं वशी ॥५४
तं दृष्ट्वा प्रणिपत्यादौ प्रतिपूज्य यथार्हतः । सुकन्यां तु ततो दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिनन्द्य च ॥५५
सस्वजे मूर्ध्नि आघ्राय ततोत्सङ्गं[1] समानयत् । सा[2] तस्याः[3] सस्वजे प्रेम्णा आनन्दाश्रुपरिप्लुता ॥
संस्थाप्य तां मुदा युक्तो नृपतिः सह भार्यया ॥५६
भूयोऽब्रवीत्सुसंतुष्टं च्यवनस्तं नराधिपम् । संभारं कुरु यज्ञार्थं याजयिष्ये नराधिप ॥५७
एवमुक्तः स नृपतिः प्रणिपत्य महामुनिम् । जगाम स्वपुरं हृष्टो यज्ञार्थं यत्नमाचरत् ॥५८
सप्रेष्यान्प्रेषयन्क्षिप्रं यज्ञार्थे द्रव्यमाहरत् । मंत्रिपुरोहिताचार्यानानयामास सत्वरम् ॥५९

इक्कीस पीढ़ी तक नरक को प्राप्त करता है । इसलिए तुम लोगों के उपकार से प्रसन्न होकर मैं भी तुम्हारा कोई महान् प्रत्युपकार अवश्य करूँगा, जिसे सर्वसामान्य मनुष्य नहीं कर सकते, यह हमारा सुनिश्चित मत है । मैं इस प्रकार के बदले में तुम लोगों को यज्ञ में भाग प्राप्त करने का अधिकारी बनाता हूँ, जिसे देवगण भी कठिनाई से प्राप्त करते हैं ।५०-५२। इस प्रकार वरदान देने के उपरान्त महामुनि च्यवन ने उन दोनों देव वैद्यों को विदा किया और स्वयं स्त्री समेत परम प्रसन्न होकर अपने पुण्य आश्रम को आये ।५३। कुछ समय बीतने के बाद जितेन्द्रिय एवं महान् तेजस्वी राजा शर्याति को भी च्यवन के दिव्य स्वरूप धारण करने की बात ज्ञात हुई तब वे देखने के लिए च्यवन के आश्रम को आये ।५४। सर्वप्रथम च्यवन को तथोक्त स्वरूप सम्पन्न देखकर राजा ने प्रणाम किया और उचित पूजनादि द्वारा

समानीतेषु सर्वेषु तेषु द्रव्येषु भारत । आजगाम विशुद्धात्मा च्यवनः सह भार्यया ॥६०
सम्पूजितश्च शुश्राव महान्तं त्यागमौजसम् । अन्यैश्च बहुभिः सार्द्धमत्र्यङ्गिरसभार्गवैः ॥६१
प्रवर्तिते महायज्ञे यजमाने नृपोत्तमे । ऋत्विक्त्वकर्मनिरते हूयमाने हुताशने ॥
आहूताः स्वागताः सर्वे भागार्थं त्रिदिवालयाः ॥६२
यज्ञभागे प्रवृत्ते तु शास्त्रोक्तेन विधानतः । आगतावश्विनौ तत्र आहूतौ च्यवनेन तु ॥६३
आह्वाने क्रियमाणे तु अश्विभ्यां तु तदा नृप । प्रोवाचेन्द्रोऽथ च्यवनं नैतौ भागान्वितौ कुरु ॥
देवानां भिषजावेतौ न भागार्हौ न दैवतौ ॥६४
च्यवनस्त्विद्रमाहेदं देवौ ह्येतावुभावपि । ममोपकारिणावेतौ दद्मि भागं न संशयः ॥६५
ततो ह्युवाच सक्रोधः स शक्रश्च्यवनं रुषा । विप्रर्षे प्रहरिष्यामि यदि भागं प्रयच्छसि ॥६६
एवमुक्तस्तु विप्रर्षिर्न चोवाचापि किञ्चन । भागौ ददौ च सोऽश्विभ्यां स्रुवमुद्यम्य मन्त्रतः ॥६७
अथ उद्यम्य भिदुरं मोक्तुकामो दिवस्पतिः । स्तम्भितश्च्यवनेनाथ सवज्रः स नराधिप ॥६८
स स्तम्भयित्वात्विन्द्रं तु भागं दत्त्वाश्विनोर्वशी । समापयामास तदा यज्ञकर्म यथार्थवत् ॥६९

राजदरबार में बुलवाया ।५९। भरतकुलोत्पन्न ! यज्ञ की समस्त सामग्रियों के जुट जाने पर विशुद्धात्मा महामुनि च्यवन भी पत्नी समेत राजा के पुर में उपस्थित हुए ।६०। उस समय उनके साथ मुनिवर अत्रि, अंगिरा तथा भार्गव भी थे। राजा शर्याति ने उन सबका विधिवत् सत्कार किया । महामुनि च्यवन ने पुर में राजा के त्याग, निष्ठा एवं महत्ता की चर्चा सुनी। तदनन्तर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ ।६१। राजश्रेष्ठ शर्याति ने यजमान का आसन ग्रहण किया। ऋत्विग् गण अपने अपने कर्मों में निरत हो गये, हुताशन (अग्निदेव) में आहुति छोड़ी जाने लगी। महायज्ञ में भाग प्राप्त करने के लिए समस्त स्वर्गलोक निवासी देवगण स्वागत सत्कारपूर्वक अपने भाग ग्रहण के लिए समीप स्थित हो गये ।६२। [illegible]

कञ्जजोऽथाजगामाशु आह च च्यवनं तदा । उत्तंभ्यता मयं लेखो भागश्चास्त्वश्विनोरिह ॥७०
तथेन्द्रस्तमुवाचेदं च्यवनं प्रीतमानसः । जानामि शक्तिं तपसश्च्यवनेह तवोत्तमाम् ॥७१
ख्यापनार्थं हि तपसस्तव एतत्कृतं मया । अद्यप्रभृति भागोऽस्तु देवत्वं चाश्विनोस्तथा ॥७२
यस्त्विमां तपसः ख्यातिं त्वदीयां वै पठिष्यति । शृणुयाद्वापि शुद्धात्मा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७३
विरोचनसदो गत्वा गत्वा पुष्पसदस्तथा । कालेऽथ वामदेवस्य मुञ्जकेशसदस्तथा ॥
यौवनयुक्तः स क्रीडास्तिष्ठतीति न संशयः ॥७४
एवमुक्त्वा जगामाशु देवः स्वभवनं वशी । च्यवनोऽपि सभार्यो वै शयार्तिश्चाश्रमं गतः ॥७५
अथापश्यद्विमानाभं भवनं देवनिर्मितम् । शय्यासनवरैर्जुष्टं सर्वकामसमृद्धिमत् ॥७६
[1]उद्यानवापिभिर्जुष्टं देवेन्द्रेण समाहृतम् । [2]गोखण्डसन्निभं रेजे गृहं तद्भुवि दुर्लभम् ॥७७
सुभूषणानि दिव्यानि रत्नवन्ति महान्ति च । अरजान्सि च वस्त्राणि दिव्यप्रावरणानि च ॥७८
दृष्ट्वा तत्सर्वमखिलं सह पत्न्या महामुनिः । मुदं परमिकां लेभे शक्रं च प्रशशंस ह ॥७९
एवमिष्टा तिथिरियं द्वितीया अश्विनोर्नृप । देवत्वं यज्ञभागं च सम्प्राप्ताविह भारत ॥८०

अवसर पर शी घ्रतापूर्वक कहीं से भगवान् ब्रह्मा आ गये और उन्होंने च्यवन से कहा—मुनिवर ! इस देवपति का स्तम्भन अब मुक्त कर दो । आज से दोनों अश्विनी कुमारों का भी यज्ञों में भाग रहेगा ।७०। तदनन्तर देवराज इन्द्र भी परम प्रसन्न होकर च्यवन से बोले—'महामुनि च्यवन मैं तुम्हारी तपस्या की परमशक्ति को जानता हूँ ।७१। तुम्हारे तप की ख्याति को अधिक बढ़ाने के लिए मैंने ऐसा किया है । आज से मैं इनके देवत्व प्राप्त करने को भी स्वीकारता हूँ ।७२। तुम्हारी यशः ख्याति की इस पुनीत कथा को जो पढ़ेगा अथवा विशुद्ध चित्त होकर सुनेगा, उसका फल सुनो ।७३। वह प्राणी विरोचन (सूर्य-चन्द्रमा) की सभा में जाकर पुष्प (?) की सभा में जाकर पुनः समय पर वामदेव तथा मुञ्जकेश की सभा में जाकर, युवा होकर क्रीड़ा करता हुआ

उपोष्या विधिना येन तं शृणुष्व नराधिप । रूपं सुरूपं यो वाञ्छेद्द्वितीयायां नराधिप ॥८१
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां नराधिप । पुष्पाहारो वर्षमेकं भवेत्स नियतात्मवान् ॥८२
कालप्राप्तानि यानि स्युर्हविष्यं कुसुमानि तु । भुञ्जीयात्तानि दत्त्वा तु ब्राह्मणेभ्यो नराधिप ॥८३
सौवर्णरौप्यपुष्पाणि अथ वा जलजानि[1] च । व्रतान्ते तस्य सन्तुष्टौ देवौ त्रिभुवनेऽश्विनौ ॥८४
ददतुः कामगं दिव्यं विमानमतितेजसम् । सुचिरं दिवि नारीभिर्लोकेऽसौ रमतेऽश्विनोः ॥८५
इह चागत्य कल्पान्ते जातो विप्रः पुरस्कृतः । वेदवेदांगविदुषः सप्तजन्मान्तराण्यसौ ॥८६
जातो जातो भवेद्विद्वान्ब्राह्मणोऽसौ कृते युगे । दाता यज्ञपतिर्वाग्मी आधिव्याधिविवर्जितः ॥८७
पुत्रपौत्रैः परिवृतः सह पत्न्याऽवसच्चिरम् । मध्यदेशे सुनगरे[2] धर्मिष्ठो राज्यभाग्भवेत् ॥८८
इत्येषा कथिता तुभ्यं द्वितीया पुष्पसंज्ञिता । फलसंज्ञा तथान्या स्यात्सुते वै मुञ्जकेशिनि ॥८९
सुष्ठु पुण्या पापहरा विष्टरश्रवसः प्रिया । अशून्यशयना लोके प्रख्याता कुरुनन्दन ॥९०

हे राजन् ! इस पुण्यतिथि में उपवास करने का विधान बता रहा हूँ, सुनिये ! हे राजन् ! जो लोग सुन्दर स्वरूप प्राप्त करने की कामना करते हैं, वे कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को प्रारम्भ कर एक वर्ष तक प्रत्येक द्वितीया को आत्मनिष्ठ एवं संयत होकर केवल पुष्पाहारी बनें ।८१-८२। हे राजन् ! उक्त नियम के अङ्गीकार कर लेने पर यथा समय जो-जो पुष्प मिलें, उन्हीं की हवि बनावें और उन्हीं को ब्राह्मणों को दान देकर स्वयं भक्षण करें ।८३। हे नराधिप ! इसी प्रकार सुवर्ण का चाँदी का तथा जल में उत्पन्न होने वाले (कमल, कुमुदिनी) पुष्पों का भी इस व्रत में उपयोग किया जा सकता है । इस व्रत के समाप्त होने पर त्रिभुवन में रहने वाले यजमान के ऊपर दोनों अश्विनीकुमार परम सन्तुष्ट होते हैं ।८४।

तामुपोष्य नरो राजञ्छ्रद्धाभक्तिपुरस्कृतः । ऋद्धिं वृद्धिं श्रियं वाथ भार्यया सह मोदते ॥९१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि द्वितीयाकल्पे शर्यात्याख्याने
पुष्पद्वितीयावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

अशून्यशयना नाम्न्याः द्वितीयातिथेर्महत्त्वम्

शतानीक उवाच

ब्रूहि मे द्विजशार्दूल द्वितीयां फलसंज्ञिताम् । यामुपोष्य नरो योषिद्वियोगं नेह गच्छति ॥१
पत्न्या नरो मुनिश्रेष्ठ भार्या च पतिना[1] सह । तामहं श्रोतुमिच्छामि विधवा स्त्री न जायते ॥
उपोषितेन येनार्य पत्न्या च सहितो नरः ॥२
तन्मे ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ श्रेयोऽर्थं नरयोषिताम् । येन मे कौतुकं ब्रह्मञ्छ्रुत्वापूर्वं प्रसर्पति ॥३

सुमन्तुरुवाच

अशून्यशयनां नाम द्वितीयां शृणु भारत । यामुपोष्य न वैधव्यं स्त्री प्रयाति नराधिप ॥
पत्नीवियुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते ॥४

परम पुण्यप्रदायिनी द्वितीया को श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त होकर उपोषित करने वाला ऋषिं-वृद्धि, लक्ष्मी तथा प्रियतमा पत्नी के समेत आनन्द का अनुभव करता है ।९१

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में द्वितीयाकल्प में राजा शर्याति के यज्ञाराधन प्रसङ्ग में पुष्प द्वितीयावर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

शेते जगत्पतिः कृष्णः श्रिया सार्धं यदा नृप । अशून्यशयना नाम तदा ग्राह्या हि सा तिथिः ॥५
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणे मासि भारत । इदमुच्चारयेत्स्नातः प्रणम्य जगतः पतिम् ॥
श्रीवत्सधारिणं देवं भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह ॥६
श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीवत्स श्रीपतेऽव्यय । गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् ॥७
गावश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः ॥८
जामयो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः । लक्ष्म्या वियुज्येऽहं देव न कदाचिद्यथा भवान् ॥९
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम् । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा ॥१०
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा तु मधुसूदन । एवं प्रमाद्य पूजां च कृत्वा लक्ष्म्यास्तथा हरेः ॥११
फलानि दद्याच्छायायामभीष्टानि जगत्पतिम् । नक्तं[1] प्रणम्यायतने हविर्भुञ्जीत वाग्यतः ॥१२
ब्राह्मणाय द्वितीयेऽह्नि शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥१३

शतानीक उवाच

कानि तानि अभीष्टानि केशवस्य फलानि तु । योज्यानि शयने विप्र देवदेवस्य कथ्यताम् ॥१४
किं च दानं द्वितीयेऽह्नि दातव्यं ब्राह्मणस्य तु । भक्तैर्नरैर्द्विजश्रेष्ठ देवदेवस्य शक्तितः ॥१५

।४। हे राजन् ! जिस समय भगवान् कृष्ण (विष्णु) लक्ष्मी के साथ शयन करते हैं, उसी समय वह अशून्यशयना नामक द्वितीया उपोषित करनी चाहिए ।५। भारत ! श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को यजमान स्नान कर जगत्पति, श्रीवत्सचिह्नधारी विष्णुदेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और लक्ष्मी समेत उनकी विधिवत् पूजा करे ।६। उस समय यह प्रार्थना करे—'श्रीवत्सधारिन् ! श्रीकान्त ! श्रीवत्स !

सुमन्तुरुवाच

यानि तत्र महाबाहो काले सन्ति फलानि तु। मधुराणि सुतीव्राणि न चापि कटुकानि तु ॥१६
दातव्यानि नृपश्रेष्ठ स्वशक्त्या शयने नृप । मधुराणि प्रदत्तानि नरो वल्लभतां व्रजेत् ॥१७
योषिच्च कुरुशार्दूल भर्तुर्वल्लभतामियात् । तस्मात्कटुकतीव्राणि स्त्रीलिङ्गानि विवर्जयेत् ॥१८
खर्जूरमातुलिङ्गानि श्वेतेन शिरसा सह । फलानि शयने राजन्यज्ञभागहरस्य तु ॥१९
देयानि कुरुशार्दूल स्वशक्त्या भुञ्जकेशिने । एतान्येव तु विप्रस्य गाङ्गेयसहितानि तु ॥२०
द्वितीयेऽह्नि प्रदेयानि भक्त्या शक्त्या च भारत । वासोदानं तथा धान्यफलदानसमन्वितम् ॥
गाङ्गेयस्य विशेषेण धान्यदानं प्रचक्षते ॥२१
एवं करोति यः सम्यङ्नरो मासचतुष्टयम् । ततो जन्मत्रयं वीर गृहभङ्गो न जायते ॥२२
अशून्यशयनश्चासौ धर्मकामार्थसाधनः । भवत्यव्याहतैश्वर्यः पुरुषो नात्र संशयः ॥२३
[1]नारी च राजन्धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि । या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ॥२४
वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यागं च सत्तम । नाप्नोति जन्म त्रियतमेतच्चीर्त्वा[2] महाव्रतम् ॥२५
अदत्त्वा कटुकानीह फलानि कुरुनन्दन । खर्जूरमातुलिङ्गानि बृहत्फलशिरांसि च ॥२६

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! अपने समय में जो न अत्यन्त मधुर न अत्यन्त तीव्र, न अत्यन्त कड़वे (फल) हों, हे नृपश्रेष्ठ ! उन्हें अपनी शक्ति के अनुकूल भगवान् की शय्या पर प्रदान करना चाहिए। मधुर फलों के दान करने से यजमान प्रिय होता है। १६-१७। हे कुरुश्रेष्ठ ! इसी प्रकार मधुर फल प्रदान करने वाली स्त्री भी पति की प्रियतमा होती है। इसलिए कड़वे, तीव्र और स्त्री भावना की अभिव्यक्ति करने वाले फलों को नहीं देना चाहिये। १८। हे कुरुशार्दूल ! विशेषतया खजूर, मातुलिङ्ग (मातुलिङ्ग अर्थात् बिजौरा) श्वेत शिर अर्थात् नारियल का फल यज्ञ भाग प्राप्त करने वाले भगवान की शय्या पर निवेदित करना

दत्त्वा द्विजेभ्यो राजेन्द्र मधुराणि पराणि च । तस्मात्स्वशक्त्या यत्तेन देयानि मधुराणि च ॥२७
इत्येषा कथिता कृष्णद्वितीया तिथिरुत्तमा । यामुपोष्य नरो राजन्नृद्धिं वृद्धिं तथा व्रजेत् ॥२८

शतानीक उवाच

भवता कथितेयं वै द्वितीया तिथिरुत्तमा । अश्विभ्यां द्विजशार्दूल कथमस्यां जनार्दनः ॥२९
सम्पूज्यः फलसंज्ञायां कथितः पद्मया सह । तदत्र कौतुकं मह्यं सुमहज्जायते द्विज ॥३०

सुमन्तुरुवाच

एवमेतन्न सन्देहो तथा वदसि भारत । अश्विनोर्वै तिथिरियं किं तु वाक्यं निबोध मे ॥३१
अशून्यशयना दत्ता [1]विष्णोरमिततेजसः । अश्विभ्यां कुरु शार्दूल प्रीतये मुञ्जकेशिनः ॥३२
तावेव कुरुशार्दूल पूज्येतेऽत्र महीपते । नासत्यौ भगवान्विष्णुर्दत्तश्च श्रीर्विभाव्यते ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
द्वितीयाकल्पसमाप्तौ विंशोऽध्यायः ।२०।

करता है—वह उपर्युक्त फल अवश्यमेव प्राप्त करता है। इसलिए यजमान को प्रयत्नपूर्वक मधुर फलों का दान करना चाहिये ।२६-२७। हे राजन् ! उस परम उत्तम फल प्रदान करने वाली कृष्ण द्वितीया तिथि को इस प्रकार मैं बतला चुका, जिसको उपोषित करने वाला ऋद्धि एवं वृद्धि को प्राप्त होता है ।२८

शतानीक ने कहा—द्विज शार्दूल ! आपने उत्तम (अशून्य शयना) द्वितीया तिथि की पुण्यदायिनी

अथैकविंशोऽध्यायः

तृतीयातिथिव्रतमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

पतिव्रता पतिप्राणा पतिशुश्रूषणे रता । एवंविधापि या प्रोक्ता शुचिः संशोभना सती ॥१
सोपवासा तृतीयां तु [1]लवणं परिवर्जयेत् । सा गृह्णाति च वै भक्त्या व्रतमामरणान्तिकम् ॥२
गौरी ददाति सन्तुष्टा रूपं सौभाग्यमेव च । लावण्यं ललितं हृद्यं श्लाघ्यं पुसां मनोरमम् ॥३
पुंसो मनोरमा नारी भर्त्ता नार्या मनोरमः । गौरीव्रतेन भवति राजँल्लवणवर्जनात् ॥४
इदं व्रतं प्रति विभो धर्मराजस्य शृण्वतः । उमया च पुरा प्रोक्तं यद्व्राक्यं तन्निबोध मे ॥५
मया व्रतमिदं सृष्टं सौभाग्यकरणं नृणाम् । मर्त्ये तु नियता नारी व्रतमेतच्चरिष्यति ॥
सह भर्त्रा स मोदेत यथा भर्ता हरो मम ॥६
याच कन्या न भर्तारं विन्दते शोभना सती । सा त्विदं व्रतमुद्दिश्य भवेदक्षारभोजना ॥
मच्चित्ता मन्मनाः कुर्यान्मद्भक्ता मत्परिग्रहा ॥७

अध्याय २१

तृतीया तिथि व्रत का माहात्म्य

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! परम पतिव्रता, पतिप्राण, पति की शुश्रूषा में रात दिन निरत रहने वाली एवं इसी प्रकार के अन्यान्य सद्गुणों से समन्वित परम सुन्दरी पवित्र भावनाओं से पूत जो सती कही गई हैं, उसको तृतीया व्रत को

गौरीं संस्थाप्य सौवर्णीं गन्धालङ्कारभूषिताम् । वस्त्रालङ्कारसंवीतां पुष्पमण्डलमण्डिताम् ॥८
लवणं गुडं घृतं तैलं देव्यै शक्त्या निवेदयेत् । [1]कटुखण्डं जीरकं च पत्रशाकं च भारत ॥९
गुडघृष्टांस्तथापूपान्खडवेष्टांस्तथा नृप । ब्राह्मणे व्रतसम्पन्ने प्रदद्यात्सुबहुश्रुते ॥१०
शुक्लपक्षे सदा देया यथा शक्त्या हिरण्मयी । धनहीने तु भक्त्या[2] च मधुवृक्षमयी नृप ॥११
अर्च्या नित्यं संनिधानात्तत्र गौरी न संशयः । अक्षारलवणं रात्रौ भुंक्ते चैव सुवाग्यता ॥१२
गौरी सन्निहिता नित्यं भूमौ प्रस्तरशायिनी[3] । एवं नियमयुक्तस्य[4] देव्या यत्समुदाहृतम् ॥१३
तच्छृणुष्व महाबाहो कथ्यमानं महाफलम् । भर्तारं तु लभेत्कन्या यं वाञ्छति मनोऽनुगम् ॥१४
सुचिरं सह वै भर्त्रा क्रीडयित्वा[5] इहैव सा । सन्ततिं च प्रतिष्ठाप्य सह तेनैव गच्छति ॥१५
हेलिलोकं चन्द्रलोकं लोकं चित्रशिखण्डिनः । गत्वा याति सदो राजन्वामदेवस्य भारत ॥१६
विधवा तु यदा राजन्देव्या व्रतपरायणा[6] । भर्त्तारं नियता नित्यं सदार्चनपरायणा ॥१७

और उस मूर्ति को सुगन्धित द्रव्य एवं अलंकारों से विधिवत् विभूषित करना चाहिये । सुन्दर वस्त्र, अलंकार एवं पुष्प, माला से विभूषित करना चाहिये। इसके उपरान्त नमक, गुड़, घी और तैल यथाशक्ति देवी के लिए समर्पित करें। फिर कटुखण्ड (गोलमिर्च), जीरा, पत्रशाक, गुड़ मिश्रित अथवा खाँड से लपेटे गये पूप किसी ऐसे बहुश्रुत ब्राह्मण को दान करे, जो ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त कर गृहास्थाश्रम में हो ।८-१०। शुक्लपक्ष की तृतीया को सर्वदा यथाशक्ति सुवर्णमयी प्रतिमा दान करनी चाहिये । हे राजन् ! निर्धनता की अवस्था में मधु (महुआ) वृक्षमयी प्रतिमा दान करनी चाहिये ।११। देवी की पूजा सर्वदा उसी मूर्ति के समीप से करनी चाहिये, उसमें गौरी का निवास रहता है—इसमें कोई सन्देह नहीं । उस समय व्रत पालन करने वालीस्त्री को वाणी पर संयम रखकर रात्रिकाल में नमक के बिना भोजन करना चाहिये ।१२। उस

इह चोत्सृज्य देहं स्वं दृष्ट्वा हरिपुरे प्रियम् । आक्षिप्य यमदूतेभ्यः सह भर्त्रा रमेद्दिवि ॥१८
वर्षकोटिं दशगुणां रमित्वा सा इहागता । भर्त्रा सहैव पूर्वोक्तं लभते फलमीप्सितम् ॥१९
इन्द्राण्यापि व्रतमिदं पुत्रार्थिन्या नराधिप । लब्धः पुत्रो व्रतस्यान्ते जयन्तो नाम नामतः ॥२०
अरुन्धत्या तथा चीर्णं वशिष्ठं प्रति कामतः । दृश्यते दिवि चाद्यापि वशिष्ठस्य समीपतः ॥२१
रोहिण्या लवणत्यागात्सपत्नीगणमर्दनम् । लब्धं देव्याः प्रसादेन सौभाग्यमचलं दिवि ॥२२
इत्येषा तिथिरित्येव तृतीया लोकपूजिता । सदा विशेषतः पुण्या वैशाखे मासि या भवेत् ॥२३
पुण्या भाद्रपदे मासि माघेप्येवं न संशयः । माघे भाद्रपदे चापि स्त्रीणां धन्या[1] प्रचक्षते ॥२४
साधारणी तु वैशाखे सर्वलोकस्य भारत । माघमासे तृतीयायां गुडस्य लवणस्य च ॥
दानं श्रेयस्करं राजन्स्त्रीणां[2] च पुरुषस्य च ॥२५
गुडेन तुष्यते दत्तो लवणेन तु विश्वभूः । गुडपूपास्तु दातव्या मासि भाद्रपदे तथा ॥२६
तृतीयायां तु माघस्य [3]वामदेवस्य प्रीतये । वारिदानं प्रशस्तं स्यान्मोदकानां च भारत ॥२७
वैशाखे मासि राजेन्द्र तृतीया चन्दनस्य च । वारिणा तुष्यते वेधा मोदकैर्भीम एव हि ॥

के पुर में अपने पति का दर्शन करती है और यमदूतों का आक्षेप करती हुई पति के साथ स्वर्गलोक में सुख का अनुभव करती है ।१७-१८। वहाँ पर दश कोटि वर्ष तक पति के साथ रमण कर वह पुनः इह लोक में जन्म धारण करती है और यहाँ आकर पति के साथ इच्छित फलों का भोग करती है ।१९। हे नराधिप ! पुत्र प्राप्ति की इच्छुक इन्द्राणी ने भी इस व्रत का विधिवत् अनुष्ठान किया था और उसी के माहात्म्य से व्रत के अवसान में जयन्त नामक पुत्र की प्राप्ति की थी ।२०। इसी प्रकार अरुन्धती ने पति रूप में वशिष्ठ की कामना करके इस व्रत का पालन किया था, जिसके फलस्वरूप स्वर्ग में आज भी वह वसिष्ठ के समीप

दानात्तु चन्दनस्येह कञ्जजो नात्र संशयः ॥२८
यात्वेषा कुरुशार्दूल वैशाखे मासि वै तिथिः । तृतीया साऽक्षया लोके गीर्वाणैरभिनन्दिता ॥२९
आगतेयं महाबाहो भूरि चन्द्रं वसुव्रता । कलधौतं तथान्नं च घृतं चापि विशेषतः ॥
यद्यद्दत्तं त्वक्षयं स्यात्तेनेयमक्षया स्मृता ॥३०
यत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तत्सर्वमक्षयं स्याद्वै तेनेयमक्षया स्मृता ॥३१
योऽस्यां ददाति करकन्वारिबीजसमन्वितान् । स याति पुरुषो वीर लोकं वै हेममालिनः ॥३२
इत्येषा कथिता वीर तृतीया तिथिरुत्तमा । यामुपोष्य नरो राजन्नृद्धिं वृद्धिं श्रियं भजेत् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शताद्धसाहस्र्यां ब्राह्मे पर्वणि तृतीयाकल्पविधिवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ।२१।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

चतुर्थीतिथिव्रतमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

चतुर्थ्यां तु सदा राजन्निराहारव्रतान्वितः । दत्त्वा तिलान्नं विप्रस्य स्वयं भुंक्ते तिलौदनम् ॥१

इस वैशाख तृतीया को चन्दन दान से पद्मोद्भव सन्तुष्ट होते हैं इसमें सन्देह नहीं ।२८। कुरुशार्दूल ! वैशाख मास की जो यह पुण्यदायिनी तृतीया तिथि है वह इस लोक में अक्षय तृतीया के नाम से देवगणों द्वारा अभिनन्दित है ।२९। हे महाबाहु ! यह पुनीत अक्षय तृतीया प्रचुर धन-धान्य देने के लिए इस पृथ्वीतल पर आई हुई है । इसमें सुवर्ण, अन्न, विशेषतया घृत आदि जो जो पदार्थ दिये जाते हैं, वे सब अक्षय रूप में

वर्षद्वये समाप्तिर्हि व्रतस्य तु यदा भवेत् । विनायकस्तस्य तुष्टो ददाति फलमीहितम्[१] ॥२
याति भाग्यनिवासं हि क्रीडते विभवैः सह । इह चागत्य पुण्यान्ते दिव्यो दिव्यवपुर्यशाः ॥३
मतिमान्धृतिमान्वाग्मी भाग्यवान्कामकारवान्[२] । असाध्यान्यपि साध्येह क्षणादेव महान्त्यपि ॥४
[३]हस्त्यश्वरथसम्पन्नं पत्नीपुत्रसहायवान् । राजा भवति दीर्घायुः सप्तजन्मान्यसौ नृप ॥
एतद्ददाति सन्तुष्टो विघ्नहन्ता[४] विनायकः ॥५

शतानीक उवाच

विघ्नः कस्य कृतस्तेन येन विघ्नविनायकः । एतद्वदस्व विघ्नेश विघ्नकारणमद्य मे ॥६

सुमन्तुरुवाच

कौमारे लक्षणे पुंसां स्त्रीणां च सुकृते कृते । विघ्नं चकार विघ्नेशो गाङ्गेयस्य विनायकः ॥७
तं तु विघ्नं विदित्वासौ कार्त्तिकेयो रुषान्वितः । उत्कृष्य दन्तं तस्यास्याद्धन्तु तं च समुद्यतः ॥८
निवार्यापृच्छद्देवेशो रोषः कार्यः कुतस्त्वया । तं चाचख्यौ स पित्रे वै कृतं पूरुषलक्षणम् ॥
तत्र विघ्नकृते मह्यं योषिता न च लक्षणम् ॥९

दो वर्ष तक अपने इस व्रत को निर्विघ्न सम्पन्न कर लेता है उसके ऊपर विनायक प्रसन्न होते हैं तथा उसके समस्त मनोवाञ्छित कार्यों की सिद्धि करते हैं ।१-२। इस व्रत के माहात्म्य से वह भाग्य के निवास को प्राप्त करता है तथा वहाँ समस्त वैभवों एवं ऐश्वर्यों के साथ आनन्द का अनुभव करता है । फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर दिव्य शरीर धारण कर वह पुण्यात्मा प्राणी यशस्वी, मतिमान, धैर्यशील, प्रवक्ता, भाग्यशाली तथा स्वच्छन्दतापूर्वक कार्य करने वाला होकर पुनर्जन्म धारण करता है तथा अपने जीवन में असाध्य एवं महान् कार्यों को भी क्षण भर में साध्य बनाने वाला होता है ।३-४। हाथी, अश्व, रथ आदि सुख साधनों से सम्पन्न पत्नी पुत्रादि के साथ वह दीर्घायु पर्यन्त राजा होता है और सात जन्मों तक वही

अथोवाच महादेवः प्रहसन्त्स्वसुतं किल । मम किं लक्षणं पुत्र पश्यसे त्वं वदस्व मे ॥१०
स चोवाच करे तुभ्यं कपालं द्विजलक्षितम् । अविचारेण संस्थाप्यं कपाली तेन चोच्यसे ॥
स तल्लक्षणमादाय समुद्रे प्राक्षिपद्रुषा ॥११
अथ देवसमाजे वै प्रवृत्ते ब्रह्मरुद्रयोः । अहं ज्यायानहं ज्यायान्विवादोऽभूत्तयोर्द्वयोः ॥
तव संभूत्यभिज्ञोऽस्ति मां तु वेद न कश्चन ॥१२
एवं शिवेऽति ब्रुवति ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः । मुक्ताट्टहासं प्रोवाच त्वामहं वेदिता भव ॥१३
एवं ब्रुवत्तु रुद्रेण ब्राह्मं ह्यशिरो महत् । नखाग्रेण निकृत्तं च तस्यैव च करे स्थितम् ॥१४
करस्थेनैव तेनासावागच्छद्यत्र वै हरिः । तपस्तेपे तदा मेरौ तत्रासौ भगवान्वशी ॥१५
कृत्ते ह्यशिरे तस्मिन्स्थानात्तस्मात्तु ब्रह्मणः । रोषाद्विनिःसृतस्त्वन्यः पुरुषः श्वेतकुण्डली ॥१६
कवची सशिरस्कश्च सशरः सशरासनः । अनिर्देश्यवपुः स्रग्वी किं करोमि स चाब्रवीत् ॥१७
अथोवाच रुषा ब्रह्मा हन्यतां स सुदुर्मतिः । स तु मार्गेण रुद्रस्य आगच्छद्रोषतो द्रुतम् ॥१८
रुद्रोऽपि विष्णुतेजोभिः प्रविष्टः स त्वधिष्ठितः । स प्रविश्य तदापश्यत्तपन्तं चोत्तमं तपः ॥

।८-९। अपने पुत्र कार्त्तिकेय की इस बात को सुनकर महादेव हँसते हुए बोले—'पुत्र ! तो देखो मेरे शरीर में कौन लक्षण है ? और उसका क्या फल होगा ?' यह मुझसे बताओं ।१०। कार्त्तिकेय ने कहा—'तात ! आपके हाथ में अविवेक के कारण किसी ब्राह्मण के कपाल (शिर) का स्थापन होगा, और उससे आपकी कपाली नाम से ख्याति होगी' कार्त्तिकेय से ऐसी बातें सुनकर शिव जी ने अति क्रुद्ध होकर उस लक्षण ग्रन्थ को समुद्र में फेंक दिया ।११। इस घटना के बहुत दिनों बाद एक बार शिव और ब्रह्मा में भरी देवसभा के बीच इस विषय पर विवाद उठ खड़ा हुआ कि दोनों में कौन बड़ा है ? उस अवसर पर इन दोनों देवों में मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ' यह कह-कहकर विवाद होने लगा । इसी बीच शिव ने ब्रह्मा से कहा—'मैं तुम्हारी

हरो नारायणं देवं वैकुण्ठमपराजितम् ॥१९
हरं दृष्ट्वाथ सम्प्राप्तं कार्यं चास्य विचिन्त्य च। उवाच शूलिनं देवो भिन्धि शूलेन मे भुजम् ॥२०
स बिभेद महातेजा भुजं शूलेन तं हरः ॥२१
शूलभेदादसृक्चोर्ध्वं जगामावृत्य रोदसी । विनिवृत्य ततः पश्चात्कपाले निपपात ह ॥२२
असृक्कपाले पतितं प्रदेशिन्या व्यवर्द्धयत् । यदा हि विनिवृत्तिः स्वाद्देवस्य रुधिरं प्रति ॥२३
तदा तु व्यसृजत्तोयं स कृत्वा वारुणीं तनुम् । तोये प्रवृत्तेऽसृग्भूते कपाले यत्र तच्छिरः ॥२४
कपाले तु प्रदेशिन्या रुद्रोऽसौ रुधिरेऽसृजत् । आमुक्तकवचं रक्तं रक्तकुण्डलिनं नरम् ॥२५
अथोवाच भवं देवं किं करोमीति मानद । असावपि ससर्जाथ श्वेतकुण्डलिनं नरम् ॥२६
तावुभौ समयुध्येतां धनुष्प्रवरधारिणौ । यथा राजन्बलीयांसौ कुजकेतू युगात्यये ॥२७
तयोस्तु युध्यतोरेवं संवर्तश्चाधिको गतः । न चादृश्यत विजय एकस्यापि तदा तयोः ॥२८
अथान्तरिक्षे तौ दृष्ट्वा वागुवाचाशरीरिणी । अवतारोऽथ भविता युवयोर्हि मया सह ॥२९
भारापनोदः कर्त्तव्यः पृथिव्यर्थे सुरैः सह । तदाश्चर्यो हि भविता देवकार्यार्थसिद्धये ॥३०
भूलोकभावं निर्धूय भूयो गन्ता सुरालयम् । एवमुक्त्वा तु वैकुण्ठो ददावेकं रवेस्तदा ॥३१

वैकुण्ठ (विष्णु) को देखा ।१९। भगवान् ने अपने आश्रम में समुपस्थित हर को देखकर तथा उनके आगमन के प्रयोजन को जानकर त्रिशूलधारी से कहा—'रुद्र ! अपने शूल से तुम मेरी बाहु को आहत करो ।२०। महान् तेजस्वी हर ने अपने त्रिशूल से विष्णु की बाहु को आहत कर दिया ।२१। शूल से बाहु को आहत होने पर रक्त की एक परम तीव्रगामिनी धारा उठी और सारे भूमण्डल में व्याप्त होकर पुनः

श्वेतकुण्डलिनं दृप्तं[1] तं जग्राह रविर्मुदा । इन्द्रस्यापि ततः पश्चाद्रक्तकुण्डलिनं ददौ ॥३२
जग्राह च मुदा युक्त इन्द्रः स्वं च पुरं ययौ । गतौ रवीन्द्रौ प्रगृह्य पुरुषौ क्रोधसम्भवौ ॥३३
अथोवाच तदा रुद्रं देवः कमलसंस्थितः । गच्छ त्वमपि कापाले कपालव्रतचर्यया ॥
अवतारो व्रतस्यास्य मर्त्यलोके भविष्यति ॥३४
ये च व्रतं त्वदीयं वै धारयिष्यन्ति मानवाः । न तेषां दुर्लभं किञ्चिद्भूवितेह परत्र च ॥३५
एवं संलप्य बहुशः सुमुखं प्रतिनन्द्य च । आहूय च समुद्रं स प्रत्युवाचाविचारयन् ॥३६
कुरुष्वाभरणं[2] स्त्रीणां लक्षणं यद्विलक्षणम् । कार्त्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ॥३७
स चाह मम नाम्नेदं भवेत्पुरुषलक्षणम् । देवेन तत्प्रतिज्ञातमेवमेतद्भूविष्यति ॥३८
कार्त्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ॥३९
प्रयच्छास्य विषाणं वै निष्कृष्टं यत्त्वयाऽधुना । अवश्यमेव तद्भूतं भवितव्यं तु कस्यचित् ॥४०
ऋते विनायकं तद्वै दैवयोगान्न कामतः । गृहाण एतत्सामुद्रं यत्त्वया परिकीर्तितम् ॥४१
स्त्रीपुंसोर्लक्षणं श्रेष्ठं सामुद्रमिति विश्रुतम् । इमं च सविषाणं वै कुरु देवविनायकम् ॥४२

रवि को दे दिया ।३१। उस श्वेत कुण्डलधारी परम गर्वोन्नत पुरुष को रवि ने परमानन्दित होकर अंगीकार किया । इसके उपरान्त रक्तकुण्डलधारी पुरुष को भगवान् ने इन्द्र के लिए प्रदान किया ।३२। उसे अंगीकार कर इन्द्र सहर्ष अपने पुर को चले गये । इस प्रकार ब्रह्मा एवं शंकर के क्रोध से उत्पन्न दोनों पुरुषों को लेकर सूर्य और इन्द्र अपने-अपने पुर को प्रस्थित हो गये ।३३। इस घटना के उपरान्त कमलासन पर स्थित भगवान् ब्रह्मा ने रुद्र से कहा—रुद्र ! तुम भी इस कपाल की व्रतचर्या को सम्पन्न करने के लिए कपाल तीर्थ की यात्रा करो । इस व्रत का अवतार मर्त्यलोक में होगा ।३४। जो मनुष्य तुम्हारे उस व्रत को

अथोवाच च देवेशं बाहुलेयः समत्सरम् । विषाणं दद्मि चास्याहं तव वाक्यान्न संशयः ।।४३
यदा त्वयं विषाणं च मुक्त्वा तु विचरिष्यति । तदा विषाणमुक्तः सन्भस्म ऐतं करिष्यति ।।४४
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा विषाणं तत्करे ददौ । विनायकस्य देवेशः कार्तिकेयमते स्थितः ।।४५
सविषाणकरोऽद्यापि दृश्यते प्रतिमा नृप । भीमसूनोर्महाबाहोर्विघ्नं कर्त्तुं महात्मनः ।।४६
एतद्रहस्यं देवानां मया ते समुदाहृतम् । यत्र देवो न वै वेद देवानां भुवि दुर्लभम् ।।४७
मया प्रसन्नेन तव गुह्यमेतदुदाहृतम् । कथितं तिथिसंयोगे विनायककथामृतम् ।।४८
य इदं श्रावयेद्विद्वान्ब्राह्मणान्वेदपारगान् । क्षत्रियांश्च स्ववृत्तिस्थान्विट्शूद्रांश्च गुणान्वितान् ।।४९
न तस्य दुर्लभं किञ्चिदिह चामुत्र विद्यते । न च दुर्गतिमाप्नोति न च याति पराभवम् ।।५०
निर्विघ्नं सर्वकार्याणि साधयेन्नात्र संशयः । ऋद्धिं वृद्धिं श्रियं चापि विन्देत भरतोत्तम ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२।

बातें सुनकर बाहुलेय कार्त्तिकेय मत्सरपूर्वक देवेश से बोले—आपकी आज्ञा से ही मैं इसके विषाण को दे रहा हूँ, इसमें सन्देह नहीं ।४३। किन्तु जिस समय यह इस विषाण को छोड़कर इधर-उधर विचरण करेगा, उसी समय यह विषाण इससे मुक्त होकर इसे ही भस्म कर देगा ।४४।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

विघ्न-विनायककथावर्णनम्

शतानीक उवाच

केनायं भीमजो विप्र प्रमथाधिपतिः कृतः । भर्तृत्वे चापि विघ्नानामधिकारी कथं बभौ ।।१

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र यदर्थं विघ्नकारकः । यैर्वापि विघ्नकरणैर्निर्युक्तोऽपि विनायकः ।।
तत्ते वच्मि महाबाहो शृणुष्वैकमनाधुना ।।२
आद्ये कृतयुगे वीर प्रजासर्गमवाप ह । दृष्ट्वा कर्माणि सिद्धानि विना विघ्नेन भारत ।।३
अगतक्लेशां प्रजां दृष्ट्वा गर्वितां कृत्स्नशो नृप । बहुशश्चिन्तयित्वा तु इदं कर्म महीपते ।।४
विनायकः समृद्ध्यर्थं प्रजानां विनियोजितः । गणानां चाधिपत्ये च भीमः कञ्जजसात्वतैः ।।
ततोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोध मे ।।५
स्वप्नेवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति । काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति ।।६
अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्टैः सहैकत्रावतिष्ठते । व्रजमानस्तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ।।७

अध्याय २३

विघ्न-विनायक की कथा का वर्णन

शतानीक बोले—विप्रवर्य ! भीमपुत्र विनायक किसके द्वारा प्रमथगणों के अधिपति बनाये गये ?

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः । करटारूढमात्मानमम्भसोन्तरगं तथा ॥८
पात्तभिश्चावृतं यान्तं सङ्गमनान्तिकं नृप । पश्यते कुरुशार्दूल स्वप्नान्ते नात्र संशयः ॥९
चित्तं च विकृताकारं करवीरविभूषितम् । तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं पौर्वसंभवम् ॥१०
कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भिणी तथा । आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च शिष्याश्चाध्ययनं तथा ॥
वणिग्लाभं च नाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ॥११
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽहनि[1] महीपते । गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितेन तु ॥१२
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वासरे धिषणस्य च । तिष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप ॥१३
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्ति वाच्य द्विजाञ्छुभान् ॥१४
व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भीमजं तथा । कृष्णं सपितरं तात [2]पवमानं सितं तथा ॥१५
धिषणं चेन्दुपुत्र च [3]कोणं केतुं च भारत । विधुन्तुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारिणम् ॥१६
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ह्रदात् । मृत्तिकां रोचनां गन्धान्गुगुलं चाप्सु निक्षिपेत् ॥१७
यदाहृतं ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं तथा ॥१८

तथा अकारण कष्ट भोगने वाला होता है। हे कुरुशार्दूल ! हे नृप ! विनायक द्वारा विघ्नित व्यक्ति अपने को हाथी के गण्डस्थल पर आरुढ़ तथा जल के भीतर नग्न होता हुआ देखता है।८। इसी प्रकार राजा शत्रु की पैदल सेना से चारों ओर घिरा हुआ अथवा कहीं दूर देश की यात्रा करता हुआ, स्वप्न के अन्त में अपने को देखता है इसमें कोई सन्देह नहीं।९। उसका चित्त विकृत रहता है तथा अपने को स्वप्न में कर-वीर (कनेर के पुष्प) से विभूषित देखता है। इस प्रकार विनायक द्वारा विघ्नित राजा अपने पूर्वजों का अर्जित राज्य नहीं प्राप्त करता।१०। कुमारी पति नहीं प्राप्त करती तथा गर्भिणी स्त्री सन्तान नहीं प्राप्त करती,

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः[1] पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥१९
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥२०
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु ते सदा ॥२१
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु । जुहुयान्मूर्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य तु ॥२२
मितश्च सम्मितश्चैव तथा च शालकंटकः । कूष्माण्डो राजश्रेष्ठास्तेऽग्नयः स्वाहासमन्विताः ॥२३
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥२४
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च । मत्स्यान्पक्वांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ॥२५
पुष्पं चित्रं सगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि । मूलकं पूरिकाः पूपांस्तथैवोण्डेरिकास्रजम् ॥
दधिपायसमन्नं च गुडवेष्टान्समोदकान् ॥२६
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् । दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥२७
रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥
अचलां बुद्धिं मे देहि धरायां ख्यातिमेव च ॥२८
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥२९

निर्मल एवं ऋषियों द्वारा अभिमंत्रित किये हुए तथा सहस्राक्ष की भाँति सहस्र धारवाले इस जल से तुम्हारा अभिषेक करता हूँ, यह जल तुम्हें पवित्र करे ।१९। राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सातों ऋषि—मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ तुम्हें ऐश्वर्य प्रदान करें ।२०। इसी भाँति तुम्हारे शिर के बालों, मस्तक, कान तथा आँखों में स्थित दुर्भाग्य (अशुभसूचक कुलक्षण) को

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥३०
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । विनायकपतेश्चैव सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥३१
इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पवर्णनं
नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनम्

शतानीक उवाच

नराणां योषितां चैव लक्षणानि महामते । प्रोक्तानि यानि विप्रेन्द्र व्योमकेशस्य सूनुना ॥१
क्रुद्धेन यानि क्षिप्तानि ईश्वरेण महोदधौ । कृष्णस्य वचनाद्भूयः समुद्रेणार्पितानि वै ॥२
अर्पितानि ततस्तस्य तेन प्राप्तानि वै कथम् । बाहुलेयेन विप्रेन्द्र तानि मे वद सुव्रत ॥३

सुमन्तुरुवाच

यथा गुहेन राजेन्द्र स्त्रीपुंसां लक्षणानि वै । प्रोक्तानि कुरुशार्दूल तथा ते कथयामि वै ॥४
शक्तिपाताद्धते क्रौञ्चे व्योमकेशस्य सूनुना । ब्रह्मा तुष्टोऽब्रवीदेनं वरं वरय मेऽनघ ॥५

प्रकार विधि-विधान सहित गणेश तथा ग्रहों की पूजा करने से निर्विघ्न कार्य की समाप्ति तथा उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।३०। इसलिए अपनी सभी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए सूर्य कार्तिकेय और

असावपि महातेजाः प्रणम्य शिरसा विभुम् । पितामहं बभाषेदं लक्षणं ब्रूहि मे विभो ॥६
नराणां युवतीनां च कौतुकं परमं मम । यन्मयोक्तं पुरा देव प्रक्षिप्तं लवणार्णवे ॥७
मत्पित्रा देवदेवेश सक्रोधेन पुरा तथा । प्राप्तं च विस्मृतं भूयस्तन्मे ब्रूहि ह्यशेषतः ॥८

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि देवेश भीमस्यानन्दवर्धन । लक्षणानि निबोध त्वं पुरुषाणामशेषतः ॥
अधमोत्तममध्यानि यानि प्राप पयोनिधिः ॥९
शिवेऽहनि सुनक्षत्रे ग्रहे सौम्ये शुभे रवौ । पूर्वाह्णे मङ्गलैर्युक्ते परीक्षेत विचक्षणः ॥१०
प्रमाणं संहतिं छायां गतिं सर्वाङ्गलक्षणम् । दन्तकेशनखश्मश्रु एतत्सर्वं विचक्षणः ॥११
पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत् । क्षीरे ह्यायुषि मर्त्यानां लक्षणैः किं प्रयोजनम् ॥१२
जघन्यो नवतिः प्रोक्तो मध्यमस्तु शताङ्गुलः । अष्टोत्तरशतं यस्य उत्तमं तस्य लक्षणम् ॥१३
प्रमाणलक्षणं प्रोक्तं समुद्रेण शुभाशुभम् । यन्मे पुरा देववर मया वै कथितं तव ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि देहावयवलक्षणम् ॥१४
पादैः समांसकैः[1] स्निग्धै रक्तैः सौम्यैः सुशोभनैः । उन्नतैः स्वेदरहितैः शिराहीनैश्च पार्थिवः ॥१५

तेजस्वी स्वामिकार्त्तिकेय भी नतमस्तक होकर प्रणाम करते हुए ब्रह्मा से बोले—हे विभो ! मुझे उन लक्षणों को बताइये ।६। मैंने स्त्री-पुरुषों के जिन लक्षणों को कहा था, उसे क्रुद्ध होकर मेरे पिता ने समुद्र में डाल दिया था। वह मुझे प्राप्त हो गया था किन्तु मुझे अब उसका स्मरण भी नहीं हैं। अतः देवाधि देव ! विस्तारपूर्वक मुझे उसी को सुनाने की कृपा करें क्योंकि पुरुषों-स्त्रियों तथा मुझे भी उसे सुनने का महान् कौतुक है। देवाधिदेव ! विस्तार पूर्वक मुझे उसी को सुनाने की कृपा करें ।७-८

यस्य पादतले रेखा सांकुशेव प्रकाशते । सततं हि सुखं तस्य पुरुषस्य न संशयः ॥१६
अस्वेदनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ । श्लिष्टाङ्गुली[1] ताम्रनखौ सुपार्ष्णी[2] व्योमकेशज ॥१७
उष्णौ शिराविरहितौ गूढ़गुल्फौ च भीमज । कूर्मोन्नतौ च चरणौ प्रख्यातौ पार्थिवस्य तु ।१८
शूर्पाकृती महाबाहो रूक्षौ श्वेतनखौ तथा । वक्रौ शिरासन्ततौ च संशुष्कौ विरलाङ्गुली ॥१९
दारिद्र्यदुःखदौ ज्ञेयौ चरणौ भीमनन्दन । ब्रह्मघ्नौ देवशार्दूल[3] पक्वमृत्सदृशौ पदौ ॥२०
पीतावगम्यानिरतौ कृष्णौ पानरतौ सदा । अभक्ष्यभक्षणे श्वेतौ ज्ञेयौ सेनाधिपोत्तम ॥२१
अङ्गुष्ठौ पृथुलौ येषां ते नरा भाग्यवर्जिताः । क्लिश्यन्ते विकृताङ्गुष्ठास्ते नराः पादगामिनः ॥२२
चिपिटैर्विकृतैर्भग्नैरङ्गुष्ठैरतिनिन्दिताः । वक्रैर्भग्नैस्तथा ह्रस्वैरङ्गुष्ठैः क्लेशभागिनः ॥२३
शूर्पाकारैश्च विकृतैर्भग्नैर्वक्रैः शिराततैः । सस्वेदैः पाण्डुरूक्षैश्च चरणैरतिनिन्दिताः ॥२४
यस्य प्रदेशिनी दीर्घा अङ्गुष्ठं या अतिक्रमेत् । स्त्रीभोगं लभते नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥
कनिष्ठायां तु दीर्घायां सुवर्णस्य तु भागिनः ॥२५
चिपिटा विरलाः शुष्का यस्याङ्गुल्यो भवन्ति वै । सभवेद्दुःखितो नित्यं धनहीनश्च वै[4] गुह ॥२६
श्वेतैर्नखैर्विरूक्षैश्च पुरुषा दुःखजीविनः । कुशीलाः कुनखैर्ज्ञेयाः कामभोगविवर्जिताः ॥
विकृतैः स्फुटितैरूक्षैर्नखैर्दारिद्र्यभागिनः ॥२७

वह निःसंदेह सर्वदा सुखी रहता है ।१६। हे कार्त्तिकेय ! स्वेदरहित, कोमल चरण-तल, कमल की भाँति सुन्दर, मिली हुई अँगुलियाँ, लाल रंग के नख, सुन्दर ऐड़ी, नसों से हीन, गरम घना गुल्फ और कछुवे के समान ऊँचे ऐसे चरण, राजा के ही होते हैं ।१७-१८। हे भीम नंदन, हे महाबाहो ! सूप के समान आकार, रेखा, श्वेतरंग के नख, टेढ़े, नसों से घिरे हुए तथा सूखे अलग अलग अंगुली

ब्रह्महत्यां च कुर्वन्ति पुरुषा हरितैर्नखैः । बन्धुभिश्च वियुज्यन्ते कुलक्षयकराश्च ते ॥२८
इन्द्रगोपकसंकाशैर्नखैर्नृपतयः स्मृताः । शङ्खावर्तप्रतीकाशैर्नखैर्भवति पार्थिवः ॥२९
ताम्रैर्नखैस्तथैश्वर्यं धन्याः पद्मनखा नराः । रक्तैर्नखैस्तथैश्वर्यं पुष्पितैः सुभगो भवेत् ॥
सूक्ष्मैरुपचितैस्ताम्रैर्नखैर्नृपतयः स्मृताः ॥३०
रोमशाभ्यां च जङ्घाभ्यां दुःखदारिद्र्यभागिनः । बन्धनं ह्रस्वजङ्घानामैश्वर्यं चैव निर्दिशेत् ॥३१
[1]मृगजङ्घाश्च राजानो जायन्ते नात्र संशयः । दीर्घजङ्घाः स्थूलजङ्घा नित्यं भाग्यविवर्जिताः ॥३२
शृगालजङ्घाः पुरुषा नित्यं भाग्यविवर्जिताः । काकजंघा नरा ये तु भवेयुर्दुःखभागिनः ॥३३
[2]पीनजङ्घास्तथैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः । सिंहव्याघ्रसमा जङ्घा धनिनः परिकीर्तिताः ॥३४
पार्थिवानां भवेद्रोम चैकैकं रोमकूपके । पंडितश्रोत्रियाणां च द्वेद्वे ज्ञेये महामते ॥३५
त्रिभिस्त्रिभिस्तथा निःस्वा मानवा दुःखभागिनः । केशाश्चैव महाबाहो निन्दिता पूजितास्तथा ॥३६
निर्मांसजानुर्म्रियते प्रवासे शिवनन्दन[3] ॥३७
सौभाग्यमल्पै : कथितं दारिद्र्यं विकटै स्तथा । निम्नैः स्वस्त्रीजिता ज्ञेयाः समांसै राज्यभागिनः ॥३८
[4]हंसभासशुकानां च तुल्या यस्य गतिर्भवेत् । स भवेत्पार्थिवः पूज्यः[5] समुद्रवचनं यथा ॥३९
अन्येषामपि शस्तानां पक्षिणां च शुभा गतिः । वृषसिंहगजेन्द्राणां [6]गतिर्भोगविवर्धिनी ॥४०

और कुल का नाश करने वाला होता है ।२८। इन्द्रगोपक कीट के समान लाल रंग, शंख घुमाव के समान आकार वाले नख, राजाओं के होते हैं ।२९। ताम्रवर्ण नख वाले ऐश्वर्यशाली और कमल वर्ण के समान नख वाले धन्य होते हैं तथा रक्तवर्ण नख वाले ऐश्वर्यशाली होते हैं। पुष्पित (विकसित) नख वाले सुन्दर होते हैं। सूक्ष्म उपचित (पुष्ट) तथा ताम्रवर्ण के नख वाले राजा होते हैं ।३०। जिसकी जाँघ में लोम हों वह दुःखी एवं दरिद्र होता है। छोटी जाँघ वालों को बन्धन तथा ऐश्वर्य मिलता है ।३१। मृग के समान जाँघ

जलोर्मिसदृशी या च काकोलूकसमा च या । गतिर्द्रव्यविहीनानां दुःखशोकभयङ्करा ॥४१
श्वानोष्ट्रमहिषाणां [1]खरसूकरयोस्तथा । गतिर्मेषसमा येषां ते नरा भाग्यवर्जिताः ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं नाम चतुर्विंशोध्यायः ।२४।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दक्षिणावर्तलिङ्गश्च नरो वै पुत्रमान्भवेत् । वामावर्ते तथा लिङ्गे नरः कन्यां प्रसूयते ॥१
स्थूलैः शिरालैर्विषमैर्लिङ्गैर्दारिद्र्यमादिशेत् । ऋजुभिर्वर्तुलाकारैः पुरुषा पुत्रभागिनः ॥२
निम्नपादोपविष्टस्य भूमिं स्पृशति मेहनः । दुःखितं तं विजानीयात्पुरुषं नात्र संशयः ॥३
भूमौ पादोपविष्टस्य गुल्फौ स्पृशति मेहनः । ईश्वरं तं विजानीयात्प्रमदानां च वल्लभम्[2] ॥४
सिंहव्याघ्रसमो यस्य ह्रस्वो भवति मेहनः । भोगवान्स तु विज्ञेयोऽशेषभोगसमन्वितः ॥५
रेखाकृतिर्मणिर्यस्य मेहने हि विराजते । पार्थिवः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा ॥६

हाथी वाली गति भोग को बढ़ाती है ।४०। जल की तरंगों, कौवे और उल्लू पक्षी के समान वाली गति, भयंकर एवं दुःख शोक उत्पन्न करने वाली होती है ।४१। इसी प्रकार कुत्ता, ऊँट, भैंसा, गधा, सूकर और भेड़ों के समान वाली गति दुर्भाग्य सूचक होती है ।४२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण वर्णन नामक

सुवर्णरजतप्रख्यैर्मणिमुक्तासमप्रभैः । प्रवालसदृशैः स्निग्धैर्मणिभिः पार्थिवो भवेत् ॥७
पाण्डुरैर्मलिनै रूक्षैर्दीर्घव्यासैर्दिशो व्रजेत् । समैस्तथोन्नतैश्चापि सुस्निग्धैर्मणिभिर्गृही ॥८
धनरक्षास्तथा स्त्रीणां भोक्तारस्ते भवन्ति हि । मणिभिर्मध्यनिम्नैस्तु पितरस्ते भवन्ति हि ॥९
युवतीनां महाबाहो निःस्वाश्चापि भवन्ति ते । नोल्बणैश्चापि धनिनो नरा वीरा भवन्ति हि ॥१०
मूत्रधारा पतेदेका वलिता दक्षिणा यदि । स भवेत्पार्थिवः पृथ्व्याः समुद्रवचनं यथा ॥११
द्वे धारे च तथा स्निग्धे धनवान्भोगवान्स्मृतः । बहुधारास्तथा रूक्षाः सशब्दाः पुरुषाधमाः ॥१२
मीनगन्धि भवेद्रेतो धनवान्पुत्रवान्भवेत् । हविगन्धि भवेद्यस्य धनाढ्यः श्रोत्रियः स्मृतः ॥१३
[1]मूषगन्धिर्भवेत्पुत्री पद्मगन्धिर्नृपः स्मृतः । लाक्षागन्धिर्भवेद्यश्च बहुकन्यः प्रजायते ॥
मद्यगन्धिर्भवेद्योद्धा क्षारगन्धिर्दरिद्रकः ॥१४
शीघ्रमैथुनगामी यः स दीर्घायुरतोऽन्यथा । अल्पायुर्देवशार्दूल विज्ञेयो नात्र संशयः ॥१५
तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांसगन्धी च भोगवान् । पद्मवर्णं भवेद्रक्तं स नरो धनवान्भवेत् ॥१६
किञ्चिद्रक्तं तथा कृष्णं भवेद्यस्य तु शोणितम् । अधमः स तु विज्ञेयः सदा दुःखैकभाजनम् ॥१७
प्रवालसदृशं स्निग्धं भवेद्यस्य च शोणितम् । राजानं तं विजानीयात्सप्तद्वीपाधिपं गुह ॥१८

भाग वाला लिंग राजा होने का सूचक होता है ।७। जिसका लिंग पांडु (पीला-सफेद) मलिन, रूखा और लम्बे अग्रभाग वाला हो, तो वह चारों ओर घूमने वाला होता है । सम, ऊँचा और स्निग्ध (चिकना) अग्रभाग जिसके लिंग का हो, वह स्त्रियों का प्रिय एवं धन की रक्षा करने वाला होता है । यदि अग्रभाग के मध्य का भाग नीचा हो, तो वह केवल कन्याओं का पिता और निर्धन होता है । हे वीर ! उसके अस्पष्ट

विस्तीर्णा मांसला स्निग्धा बस्तिः पुंसां प्रशस्यते। निर्मांसा विकटा रूक्षा बस्तिर्येषां न ते शुभाः ॥१९
गोमायुसदृशी यस्य श्वानोष्ट्रमहिषस्य च । स भवेद्दुःखितो नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥२०
यश्चैकवृषणस्तात जले प्राणान्विमुञ्चति । स्त्रीचञ्चलस्तु विषमैः समै राज्यं प्रचक्षते ॥२१
ऊर्ध्वगैश्चापि ह्रस्वायुः शतञ्जीवी प्रलम्बधृक् । मानवाश्चापि रक्तैस्तु धनवन्तो भवन्ति वै ॥२२
स्थूलस्फिग्भवति क्षेमी द्रव्ययुक्तः समांसधृक् । व्याघ्रस्फिङ्मण्डलो राजा मण्डूकस्फिङ्नराधिपः॥
द्विमण्डलो महाबाहो सिंहस्फिक्सार्वभौमता ॥२३
उष्ट्रवानरयोर्यस्तु धारयेत्स्फिङ्महामते । धनधान्यविहीनोऽसौ विज्ञेयो भीमनन्दन ॥२४
पुमान्मृगोदरो धन्यो मयूरोदर एव च । व्याघ्रोदरो नरपती राजा सिंहोदरो भवेत् ॥२५
मण्डूकसदृशं यस्य पुरुषस्योदरं भवेत् । स भवेत्पार्थिवः पृथ्व्यां समुद्रवचनं यथा ॥२६
मांसलैर्ऋजुभिर्वृत्तैः पार्श्वैर्नृपतयः स्मृताः । ईश्वरो व्याघ्रपृष्ठस्तु सेनायाश्चैव नायकः ॥२७
सिंहपृष्ठो नरो यस्तु बन्धनं तस्य निर्दिशेत् । कूर्मपृष्ठास्तु राजानो धनसौभाग्यभागिनः ॥२८
विस्तीर्णं हृदयं येषां मांसलोमचितं समम् । शतायुषो विजानीयाद्भोगभाजो महाधनान् ॥२९
विरलाः शुष्कास्तथा रूक्षा दृश्यन्तेऽङ्गुलयः करे। स भवेद्दुःखितो नित्यं नरो दारिद्र्यभाजनम् ॥३०

भाग, चौड़ा मांस भरा हुआ एवं चिकना हो, तो शुभदायक तथा मांसहीन, विकट और रूखा हो तो अशुभ करने वाला होता है।१९। जिसका (मूत्राशय) सियार, कुत्ता, ऊँट और भैंसे के समान हो तो वह निःसंदेह पुरुष दुःखी रहता है।२०। हे तात ! जिसके एक अण्डकोष हों, वह जल में प्राण-त्याग करता है।

यस्य मीनसमा रेखा कर्मसिद्धिश्च तस्य तु । धनवान्स तु विज्ञेयो बहुपुत्रश्च मानवः ॥३१
तुला यस्य तु वेदी वा करमध्ये तु दृश्यते । तस्य सिध्यति वाणिज्यं पुरुषस्य न संशयः ॥३२
सौम्ये पाणितले यस्य द्विजस्य तु विशेषतः । यज्ञयाजी भवेन्नित्यं बहुवित्तश्च मानवः ॥३३
शैलं वाप्यथ वा वृक्षः करमध्ये तु दृश्यते । अचलां श्रियमाप्नोति बहुभृत्यसमन्वितः ॥३४
शक्तितोमरबाणासिरेखा[1] चापोपमा तथा । यस्य हस्ते महाबाहो स जयेद्विग्रहे रिपून् ॥३५
ध्वजश्चाप्यथ वा शंखः करमध्ये तु दृश्यते । समुद्रयायी स भवेद्धनी च सततं गुह ॥३६
श्रीवत्समथ वा पद्मं वज्रं वा चक्रमेव च । रथो वाप्यथ वा कुम्भो यस्य हस्ते प्रकाशते ॥
राजानं तं विजानीयात्परसैन्यविदारणम् ॥३७
दक्षिणे तु कराङ्गुष्ठे यवो यस्य तु दृश्यते । सर्वविद्याप्रवक्ता च भवेद्वै नात्र संशयः ॥३८
यस्य पाणितले रेखा कनिष्ठामूलमुत्थिता[2] । गता मध्यं प्रदेशिन्याः स जीवेच्छरदः शतम् ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे
पुरुषलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५।

जिसके हाथ की रेखा मछली की भाँति हो उसे प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है तथा वह धनवान् और बहु पुत्रवान् होता है।३१। जिसके हाथ के मध्य में तुला (तराजू) या वेदी की भाँति रेखा हो, उस पुरुष के

अथ षड्विंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

समकुक्षिर्भवेद्भोगी निम्नकुक्षिर्धनापहः । मायावी विषमा[1] कुक्षिस्तथा कुहककृत्सदा ॥१
राजा स्यान्निम्नकुक्षिस्तु सार्वभौमो महाबलः । सर्पोदरा दरिद्राः स्युर्बहुभक्षाश्च सुव्रत ॥२
विस्तीर्णाभिर्मण्डलाभिरुन्नताभिश्च नाभिभिः । भवन्ति सुखिनो वीरा धनधान्यसमन्विताः ॥३
निम्नाभिरथ स्वल्पाभिः क्लेशभाजो भवन्ति हि । वलिर्मध्यङ्गता वीरा विषमा च विशेषतः ॥
धनहानिं तथा शूलं नित्यं जनयते विभो ॥४
वामावार्ता सदा शान्तिं करोतीति विदुर्बुधाः । करोति मेधां दक्षिणेन संप्रवृत्ता दिवस्पते ॥५
पार्श्वायता दीर्घमायुरैश्वर्यमूर्ध्वतः स्मृतम् । गवाढ्यतामधस्तात्तु करोतीति विदुर्बुधाः ॥६
शतपत्रकर्णिकाभा नाभिर्यस्य महामते । भूपत्वं कुरुते सा तु पुरुषस्य न संशयः ॥७
समोदरो भवेद्भोगी निस्वः स्याद्विषमोदरः । सूक्ष्मोदरो भवेद्वाग्मी बहुसम्पत्समन्वितः ॥८

अध्याय २६

पुरुषलक्षणवर्णन

ब्रह्मा बोले— सम कोख (पेट की दाहिनी और बाईं बगल) वाला मनुष्य भोगी, नीची-ऊँची कोख

शस्त्रेणान्तं व्रजेद्वीर स्त्रीभोगं चाप्नुयात्तथा । आचार्यो बहुपुत्रश्च यथासङ्ख्यं विनिर्दिशेत् ॥९
वलिभिर्देवशार्दूल इत्याह स पयोनिधिः । अगम्यागामिनो ज्ञेया विषमाभिर्न संशयः ॥१०
ऋजुभिर्वसुभोगी स्यात्परदारविनिन्दकः । मांसलैर्मृदुभिः पार्श्वै राजा स्यान्नात्र संशयः ॥११
अनूर्ध्वचिबुका ये तु सुभगास्ते भवन्ति वै । निर्धना विषमैर्दीर्घैर्भवन्तीह सुवीरज ॥१२
पीनैश्चोपचितैर्निम्नैः [1]स्कन्धैर्भीमाङ्गसम्भव । राजानः सुखिनश्चापि भवन्तीह न संशयः ॥१३
समोन्नतं तु हृदयं समं च पृथु चैव हि । अवेपनं मांसलं च पार्थिवानां न संशयः ॥१४
खररोमचितं वीरशिरालं च विशेषतः । अधनानां भवेदेव हृदयं ऋभवोत्तम ॥
समवक्षसोऽर्थयुताः पीनैः शूराः स्मृता बुधैः ॥१५
तनुभिर्द्रव्यहीनाः स्युरसमैश्चाप्यकिञ्चनाः । वध्यन्ते चापि शस्त्रेण नात्र कार्या विचारणा ॥१६
हनुभिर्विषमैर्वीर जन्महीनो भवेन्नरः । यस्योन्नतो भवेद्धनुः स भोगी स्यान्न संशयः ॥१७
निर्मांसैर्विषमैर्वीर निःस्वो निम्नैः प्रचक्ष्यते । धनवांश्च भवेत्पीनैः सुखभोगसमन्वितः ॥
विषमैरर्थहीनः स्याद्दुःखभागी सदा नरः ॥१८
चिपिटग्रीवको दुष्टो मतो लोके स वै गुह । शूरः स्यान्महिषग्रीवो मृगग्रीवो भयातुरः ॥१९
कम्बुग्रीवो भवेद्राजा लम्बकण्ठोऽग्रलक्षणः । ह्रस्वग्रीवस्तु धनवान्सुसुखी भोगवांस्तथा ॥२०

है दो बलि हो तो स्त्री भोगी, तीन बलि हो तो आचार्य और उसके अधिक पुत्र होते हैं ।९। हे देवशार्दूल ! इसी प्रकार समुद्र ने बताया था कि विषम बलि हो तो उसे निःसंदेह अगम्या (जो किसी प्रकार से भोग करने योग्य न हो) स्त्री के साथ गमन करने वाला जानना चाहिये ।१०। सीधी बलि हो तो धन का उपभोग करने वाला एवं पर-स्त्री की निंदा करने वाला होता है। यदि दोनों ओर कोमल मांसों से भरी बलि हो तो

निर्मांसौ रोमशौ भग्नावल्पौ वापि विशेषतः । निर्धनस्येदृशावंसौ प्रख्यातौ व्योमकेशज ॥२१
भवेदरोमशं पृष्ठं धनिनां भीमसम्भव । सलोमशं तथा वक्रं निर्धनानां बलाधिप ॥२२
अस्वेदनावुन्नतौ च तथा पीनौ षडानन । समरोमसुगन्धौ च कक्षौ ज्ञेयौ धनान्वितौ ॥२३
अव्युच्छिन्नौ तथा श्लिष्टौ विपुलौ च सुराधिप । शूराणामीदृशावंसौ नगजानन्दवर्धन ॥२४
उद्बद्धबाहुको यस्तु वधबन्धनमाप्नुयात् । दीर्घबाहुर्भवेद्राजा समुद्रवचनं यथा ॥२५
प्रलम्बबाहुर्विज्ञेयो नरः सर्वगुणान्वितः । ह्रस्वबाहुर्भवेद्दासः परप्रेष्यकरोऽपि वा ॥२६
वामावर्तभुजा ये तु दीर्घायतभुजाश्च ये । सम्पूर्णबाहू राजा स्यादित्याह स पयोनिधिः ॥२७
ग्रीवा च [1]वर्तुलाकारा कम्बुरेखासमावृता । स भवेत्पार्थिवो भूमौ सर्वदुष्टनिबर्हणः ॥२८
दीर्घग्रीवा बकग्रीवा शुकग्रीवाश्च ये नराः । उष्ट्रग्रीवाः करिग्रीवाः सर्वे ते निर्धनाः स्मृताः ॥२९
इभाङ्गसदृशौ[2] वृत्तौ समौ पीनौ च सुव्रत । आजानुलम्बिनौ बाहू पार्थिवानां न संशयः ॥३०
दरिद्राणां लोमशौ ह्रस्वौ बाहू ज्ञेयौ सुरोत्तम । तस्कराणां च विषमौ स्थूलौ सूक्ष्मौ च सुव्रत ॥३१
निम्नं करतलं यस्य पितृवित्तं न तस्य वै । भवेदार्भवशार्दूल तथा भीरुश्च मानवः ॥३२
सुवृत्ततनुनिम्नेन धनवान्करतलेन तु । उत्तानकरतलो दाता भवतीति न संशयः ॥३३

और छोटे गर्दन वाला मनुष्य धनी, सुखी एवं भोगी होता है ।१९-२०। शिव पुत्र ! मांसरहित, रोम से भरा हुआ, टेढ़ा और छोटा कन्धा विशेषकर निर्धनों के लिए ही प्रसिद्ध है ।२१। हे सेनानायक ! उसी भाँति-रोमहीन पीठ धनिकों की और रोमवाली एवं टेढ़ी निर्धनों की होती है ।२२। पीन से रहित, ऊँची मोटी, समान रोम और सुगंध वाली काँख धनवानों की होती है ।२३। सुराधिप ! पार्वती आनन्दवर्धन !

विषमा भवन्ति विषमैर्निम्नाश्चापि विशेषतः । करतलैर्देवशार्दूललाक्षाभैरीश्वराः स्मृताः ॥३४
अगम्यागमनं पीतै रूक्षैर्निर्धनता स्मृता । अपेयपानं कुर्वन्ति नीलकृष्णैः सदैव हि ॥३५
निम्नाः स्निग्धा भवेन्नृणां रेखा करतले गुह । धनिनां न दरिद्राणामित्याह स पयोनिधिः ॥३६
विरलाङ्गुलयो ये तु ते दरिद्राः प्रचक्षते । धनिनस्तु महाबाहो ये घनाङ्गुलयो नराः ॥३७
वदनं मण्डलं यस्य धर्मशीलं तमादिशेत् । शुण्डवक्त्रा नरा ये तु दुर्भगास्ते न संशयः ॥३८
हरिवक्त्रा जिह्मवक्त्रा विकृतास्यास्तथा नराः । भग्नवक्त्राः करालास्याः सर्वे ते तस्कराः स्मृताः ॥३९
सम्पूर्णवक्त्रा राजानो गजसिंहाननास्तथा । छागवानरवक्त्राश्च धनिनः परिकीर्तिताः ॥४०
यस्य गण्डौ सुसम्पूर्णौ पद्मपत्रसमप्रभौ । कृषिभागी भवेन्नित्यं बहुवित्तश्च मानवः ॥४१
सिंहव्याघ्रगजेन्द्राणां कपोलः सदृशो यदि । महाभोगी स विज्ञेयः सेनायाश्चैव नायकः ॥४२
वदनं तु समं श्लक्ष्णं सौम्यं संवृतमेव हि । पार्थिवानां महाबाहो विपरीतन्तु दुःखदम् ॥४३
महामुखं तु देवेश दुर्भगत्वं प्रयच्छति । स्त्रीमुखं पुत्रनाशाय मण्डलं सुखितां व्रजेत् ॥४४
द्रव्यनाशाय वै दीर्घं पापदं भयदं तथा । धूर्तानां चतुरस्रं स्यात्पुत्रहानिकरं शृणु ॥४५
निम्नवक्त्रं च देवेन्द्र पुत्रहानिकरं भवेत् । ह्रस्वं भवति कीनाशे पूर्णकान्तं च भोगिनाम् ॥४६
रक्ताधरो नरपतिर्धनवान्कमलाधरः । स्थूलोष्ठा हनुमूलाश्च शुष्कैस्तीक्ष्णैश्च दुःखिताः ॥४७

और अधिकतर नीची हथेली अच्छी नहीं होती है । हे देव वीर ! लाह के समान हथेली वाला ऐश्वर्यवान् होता है ।३४। पीली हथेली से मनुष्य अगम्या (जो किसी प्रकार से भोग करने के योग्य न हो) स्त्री के साथ गमन, रूखी हथेली से निर्धन, नीली एवं काली हथेली से अपेय (जो किसी प्रकार पीने के योग्य न हो) वस्तु का सदैव पान करने वाला होता है ।३५। हे गुह ! नीची और चिकनी रेखा धनवानों की हथेली

अस्फोटिताग्रं स्निग्धं च नतं मृदु तथा गुह । सम्पूर्णं च सदा शस्तं श्मश्रु भूमिपतेर्गुह ॥४८
रक्तैश्चाल्पैस्तथा रूक्षैः श्मश्रुभिर्भीमनन्दन । नराश्चौरा भवन्त्येव परदाररतास्तथा ॥४९
निर्मांसौ यस्य वै कर्णौ संग्रामान्नाशमृच्छति[1] । चिपिटाभ्यां भवेद्भोगी ह्रस्वौ च कृपणस्य च ॥५०
शङ्कुकर्णश्च भूनाथः सर्वशत्रुभयङ्करः । दीर्घायू रोमशाभ्यां तु विपुलाभ्यां नराधिपः ॥
भोगी च स भवेन्नित्यं देवब्राह्मणपूजकः ॥५१
शिरावबद्धौ क्रूरस्य व्यालम्बौ च विशेषतः । मांसलौ सुखदौ ज्ञेयौ श्रवणौ व्योमकेशज ॥५२
भोगी स्यान्निगण्डो वै मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः । शुभभाक्छुकनासस्तु चिरजीवी शुष्कनासिकः ॥५३
कुन्दकुण्डलसङ्काशैः प्रकाशैर्दशनैर्नृपः । ऋक्षवानरदन्ताश्च नित्यं क्षुत्परिपीडिताः ॥५४
हस्तिदन्ताः खरदन्ताः स्निग्धदन्ता गुणान्विताः । करालैर्विरलै रूक्षैर्दशनैर्दुःखजीविनः ॥५५
द्वात्रिंशदन्ता राजान एकत्रिंशच्च भोगवान् । त्रिंशदन्ता नरा नित्यं सुखदुःखित्वभागिनः ॥
ऊनत्रिंशच्च दशनैः पुरुषाः दुःखभागिनः ॥५६
कृष्णजिह्वो भवेत्प्रेष्यः सवलया तु जिह्वया । भवेत्कोपस्य कर्ता वै स्थूलरूक्षश्च जिह्वया ॥५७
श्वेतजिह्वा नरा ज्ञेयाः शौचाचारसमन्विताः । पद्मपत्रसमा जिह्वा सूक्ष्मा दीर्घा सुशोभना ॥
स्थूला च न च विस्तीर्णा येषां ते मनुजाधिपाः ॥५८

चिकनी, नीचे की ओर झुकी हुई, कोमल और बालों से भरी हुई (अच्छी दाढ़ी राजा की होती है।४८। हे भीमनन्दन ! उसी प्रकार लाल, थोड़ी और रूखी दाढ़ी वाले मनुष्य चोर तथा व्यभिचारी होते हैं।४९। जिसके कान मांस-हीन हों, लड़ाई द्वारा उसका नाश होता है। चिपटे कान वाला मनुष्य भोगी, छोटे कान वाला कृपण (कंजूस) नुकीले कान वाला समस्त शत्रुओं के लिए भयंकर पृथ्वीपति, रोम से भरे हुए कान

निम्ना स्निग्धा च ह्रस्वा च रक्ताग्रा रसना यदि । सर्वविद्याप्रवक्तारस्ते भवन्ति न संशयः ॥५९
कृष्णतालुर्नरो यस्तु स भवेत्कुलनाशनः । सुखभागी दुःखभागी पीततालुर्नराधिपः ॥६०
विकृतं स्फुटितं रूक्षं तालुकं न प्रशस्यते । सिंहतालुर्नरपतिर्गजतालुस्तथैव च ॥
पद्मतालुर्भवेद्राजा श्वेततालुर्धनेश्वरः ॥६१
हंसस्वरा नरा धन्या मेघगम्भीरनिःस्वनाः । क्रौंचस्वनाश्च राजानो भोगवन्तो महाधनाः ॥६२
चक्रवाकस्वना धन्या राजानो धर्मवत्सलाः । कुम्भस्वनो नरपतिर्दुन्दुभिस्वन एव च ॥
रूक्षदीर्घस्वराः क्रूराः पशूनां सदृशा न तु ॥६३
[2]गुर्गुरस्वरसंयुक्ताः पुरुषाः क्लेशभागिनः । चाषस्वना भाग्ययुता भिन्नकांस्यस्वराश्च ये ॥
क्षीणभिन्नस्वरा ये स्युरधमास्ते प्रकीर्तिताः ॥६४
पार्थिवास्तनुनासाश्च दीर्घनासाश्च भोगिनः । ह्रस्वनासा नरा ये तु धर्मशीलास्तु ते मताः ॥६५
हस्त्यश्वसिंहनासाश्च सूचीनासाश्च ये नराः । तेषां सिध्यति वाणिज्यं हयानां चैव विक्रयः ॥६६
विकृता नासिका यस्य [3]स्थूलाग्रा रूपवर्जिता । पापकर्मा स विज्ञेयः सामुद्रवचनं यथा ॥६७
दाडिमीपुष्पसंकाशे भवेतां यस्य लोचने । [4]भूपतिः स तु विज्ञेयः सप्तद्वीपाधिपो गुह ॥६८
व्याघ्राक्षाः कोपना ज्ञेयाः [5]कर्कटाक्षाः कलिप्रियाः । बिडालहंसनेत्राश्च भवन्ति पुरुषाधमाः ॥६९

के विद्वान् होते हैं ।५९। काले रंग का तालू वाला पुरुष, कुल का नाश करने वाला होता है । पीले तालू वाला मनुष्य समान सुख-दुःख भोगने वाला राजा होता है ।६०। विकार समेत, फटी और रूखी तालू अच्छी नहीं होती है । सिंह, हाथी एवं कमल की भाँति तालू वाले मनुष्य राजा और सफेद तालू वाले

मयूरनकुलाक्षाश्च नरास्ते मध्यमाः स्मृताः । न [1]श्रीस्त्यजति सर्वज्ञ पुरुषं मधुपिङ्गलम् ॥७०
आपिङ्गलाक्षा राजानः सर्वभोगसमन्विताः । रोचना हरितालाक्षा गुञ्जापिङ्गा धनेश्वराः ॥
बलसत्त्वगुणोपेताः पृथिवीचक्रवर्तिनः ॥७१
द्विमात्रावीक्षणा नित्यं जीवन्ति परमाश्रिताः । त्रिमात्रास्यन्दिनो ज्ञेयाः पुरुषाः सुखभागिनः ॥७२
चतुर्मात्रानिमेषैश्च नयनैरीश्वराः स्मृताः । दीर्घायुषो धर्मरताः पञ्चमात्रानिमेषिणः ॥७३
ह्रस्वकर्णा महाभागा महाकर्णाश्च ये नराः । आवर्तकर्णा धनिनः स्निग्धकर्णास्तथैव च ॥७४
दीर्घायुषः शुक्तिकर्णाः शङ्खकर्णा महाधनाः । दीर्घायुषो दीर्घकर्णा लम्बकर्णास्तपस्विनः ॥७५
ललाटेनार्धचन्द्रेण भवन्ति पृथिवीश्वराः । विपुलेन ललाटेन महाधनपतिः स्मृतः ॥
स्वल्पेन तु ललाटेन नरो धर्मरतः स्मृतः ॥७६
रेखा पञ्च ललाटे तु स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । शतं जीवति वर्षाणामैश्वर्यं चाधिगच्छति ॥७७
चतूरेखामशीतिं तु त्रिभिः सप्ततिमेव च । द्वाभ्यां षष्टिं तु रेखाभ्यां चत्वारिंशत्तथैकया ॥
अरेखेन ललाटेन विज्ञेया पञ्चविंशतिः ॥७८
रेखाच्छेदैस्तु विज्ञेया हीनमध्योत्तमा नराः । अल्पायुषस्तथाल्पाभिर्व्याधिभिः परिपीडिताः ॥७९
त्रिशूलं पट्टिशं वापि ललाटे यस्य दृश्यते । ईश्वरं तं विजानीयाद्भोगिनं कीर्तिमाश्रितम् ॥८०

वाले मनुष्य अधम श्रेणी के होते हैं । शहद के समान भूरा लिए हुए लाल या पीतवर्ण की आँख वाले का त्याग, लक्ष्मी कभी नहीं करती हैं ।७०। एकमात्र लाल या थोड़ी पीली (कंजा) आँख वाले मनुष्य संपूर्ण उपभोग करने वाले राजा होते हैं । गोरोचन, हरताल और घुँघुची के समान आँख वाले सात्विक एवं

उत्क्रान्तनिम्नं तु शिरः स्वल्पोपहतमेव च । चन्द्राकारं[1] नरेन्द्राणां गवाढ्यं मङ्गलं स्मृतम् ॥८१
विषमं तु दरिद्राणां शिरो दीर्घं तु दुःखिनाम् । नागकुम्भनिभं राज्ञः समं सर्वत्र भोगिनः ॥८२
कपिलैः स्फुटितै रूक्षैः स्थूलैश्च शिखरेशयैः । दुःखिता पुरुषा ज्ञेया रोमश्मश्रुभिरेव च ॥८३
रूक्षा विवर्णा निस्तेजाः खराः स्थूलाश्च मूर्धजाः । नातिस्तोका न बहुशो मूर्धजा दुःखभागिनः ॥८४
विरलाश्च मृदुस्निग्धा भ्रमराञ्जनसप्रभाः । कचा यस्य तु दृश्यन्ते स भवेत्पृथिवीपतिः ॥८५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षण-वर्णनम्

कार्तिकेय उवाच

संक्षेपतो मम विभो लक्षणानि नृपस्य तु । शुभानि चाङ्गजातानि ब्रूहि मे वदतां वर ॥१

ब्रह्मोवाच

शृणु वक्ष्येऽङ्गजातानि पार्थिवस्य शुभानि च । पार्थिवो ज्ञायते यैस्तु नराणां मध्यभागतः ॥२

ऊँचाई-नीचाई लिए (चढ़ाव-उतार) कुछ दबे हुए एवं चन्द्राकार शिर राजाओं के लिए माङ्गलिक, अधिक गौओं को देने वाला कहा गया है ।८१। दरिद्रों का ऊँचा या नीचा, दुःखी लोगों का लम्बा, राजा का गजकुंभ के समान और सर्वत्र उपभोग करने वाले मनुष्य का सम, सिर होता है ।८२। कपिल (भूरा) फटे,

त्रीणि यस्य महाबाहो विपुलानि नरस्य तु । उन्नतानि तथा षड् वै गम्भीराणि च त्रीणि वै ॥३
चत्वारि चापि ह्रस्वानि सप्त रक्तानि वा विभो । दीर्घाणि चापि सूक्ष्माणि भवन्ति यस्य पञ्च वा ॥४
नाभिः संधिः स्वनश्चेति गम्भीराणि च त्रीणि वै । वदनं च ललाटं च दन्तोत्तम उरस्तथा ॥५
विस्तीर्णमेतस्त्रितयं वीर यस्य नरस्य तु । स राजा नात्र सन्देहः भृणुष्वेवोन्नतानि च ॥६
कृकाटिका तथा चास्यं नखा वक्षोऽथ नासिका । कक्षे चापि महाबाहो षडेतानि विदुर्बुधाः ॥७
लिङ्गं पृष्ठं तथा ग्रीवा जङ्घा ह्रस्वानि सुव्रत । नेत्रान्ते हस्तपादौ तु ताल्वोष्ठौ च सुरोत्तम ॥
जिह्वा रक्ता नखाश्चैव सप्तैतानि महामते ॥८
त्वचः कररुहाः केशा दशना ऋभवोत्तम । सूक्ष्माण्येतानि च गुह पञ्च चापि विदुर्बुधाः ॥९
नासिकालोचने बाहू स्तनयोरन्तरं हनुः । इति दीर्घमिदं प्रोक्तं पञ्चकं भूभुजां नृप ॥१०
क्षुतं राज्ञां सकृद्द्विस्त्रिर्नादितं ह्रादितं तथा । दीर्घायुषां प्रयुक्तं ते हसितं च विदुर्बुधाः ॥११
पद्मपत्रनिभे नेत्रे धनिनां शिवनन्दन । भार्गवीमाप्नुयात्सोऽपि रक्तान्ते यस्य लोचने ॥१२
मधुपिङ्गैर्महात्मानो नरा ज्ञेयाः सुराधिप । भीरवो हि कृशाक्षास्तु चौरा मण्डलचक्रकैः ॥१३
क्रूराः केकरनेत्रास्तु गम्भीरैरर्थसम्पदः । नीलोत्पलाभैर्वेदविदो भृशं कृष्णैस्तथार्थिता ॥
मन्त्रित्वं स्थूलसुदृशो वदन्ति भुवि तद्विदः ॥१४

लाल, पाँच लम्बे एवं पाँच पतले हों । जैसे—जिस पुरुष की नाभि, संधि (गांठ या स्वभाव) और वाणी ये तीनों गंभीर हों तथा हे दन्तोत्तम ! मुख, ललाट एवं छाती ये तीनों चौड़ी हों, वह निःसंदेह राजा होता है। उसी प्रकार ऊँचे स्थानों को भी कह रहा हूँ, सुनो ।३-६। गले की घाँटी, मुख, नख, उरुस्थल, नाक और

श्यामाक्षाः सुभगा ज्ञेया दीनाक्षैश्च दरिद्रता । विस्तीर्णैर्भोगिनो श्रेया विपुलैश्च तथा गुह ॥१५
अभ्युन्नताभिर्हस्वायुर्विशालाभिः सुखी भवेत् । दरिद्रो विषमाभिस्तु ततो ज्ञेयः सुरोत्तम ॥१६
भ्रुवो बालेन्दुसदृशा धनिनामार्भवोत्तम । दीर्घाभिर्निर्धनो ज्ञेयः संसक्ताभिस्तु सुव्रत ॥१७
क्षीणाभिरर्थहीनाः स्युर्नरा ज्ञेयाःसुरोत्तम । मध्ये नतभ्रुवो ये च परदाररतास्तु ते ॥१८
विरलैरुन्नतैः शंखैर्धन्याः[1] स्युर्नात्र संशयः । निम्नैः स्तुत्यर्थसंसक्ता[2] उन्नतैश्च जनाधिपाः ॥१९
विषमललाटा विधनाः सदा स्युर्देवसत्तम । आचार्याः शुक्तिसदृशैर्नराः स्युर्नात्र संशयः ॥२०
उन्नतशिरोभिराढ्या नरा ज्ञेयाः सदा गुह । वधबन्धभागिनो वीरा नरा निम्नललाटिनः ॥
मृशमुन्नतैश्च मूर्खाश्च कृपणाश्च तथा नतैः ॥२१
शुभावहं मनुष्याणां वदनं स्याद्यथा शृणु । अदीनमाननं स्निग्धं सस्मितं च विशेषतः ॥२२
साश्रुदीनं तथा रूक्षमस्निग्धं निन्दितं[4] गुह । असम्भाव्यं मुखं ज्ञेयं नराणां नगदारण ॥२३
अकम्पं शुभदं ज्ञेयं नराणां हसितं गुह । निमीलिताक्षं पापस्य हसितं चार्भवोत्तम ॥२४
आमण्डलं शिरो यस्य स गवाढ्यो नरो भवेत् । छत्राकृति शिरो यस्य स भवेन्नृपतिर्नरः ॥२५
चिपिटाकारितशिरा हन्याद्वै पितरौ नरः । घण्टाकृति शिरोध्वानमसकृत्सेवते नरः ॥

दीनहीन आँखों वाला दरिद्र होता है। हे गुह ! उसी प्रकार चौड़ी और बड़ी आँखों वाले को भोगी जानना चाहिए।१५। हे सुरोत्तम ! चारों ओर से ऊँची आँख वाला अल्पायु, विशाल नेत्र वाला सुखी और विषम आँख वालों को दरिद्र जानना चाहिए।१६। धनवानों की भौंहें नवीन चन्द्रमा (द्वितीया के चन्द्रमा) की भाँति होती है। हे सुव्रत ! सुरोत्तम ! भली-भाँति आपस में मिली हुई और लम्बी चौड़ी भौंह वाले निर्धन तथा दुबली-पतली भौंह वाले को भी निर्धन जानना चाहिए। जिसकी भौंह का मध्य भाग नीचा हो, वह

निम्नं शिरोनर्थदं स्यान्नराणामर्भवोत्तम ॥२६
गुडैः स्निग्धैस्तथा कृष्णैरभिन्नाग्रैस्तथैव हि । केशैर्न चातिबहुलैर्मृदुभिः पार्थिवो भवेत् ॥२७
बहुलाः कपिलाः स्थूला विषमाः स्फुटितास्तथा। परुषा ह्रस्वातिकुटिला दरिद्राणां कचाः घनाः ॥२८
इत्युक्तं लक्षणं नृणां शुभं वाशुभमेव च । योषितां तदिदानीं ते लक्षणं वच्मि भीमज ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शृण्विदानीं महाबाहो स्त्रीलक्षणमनुत्तमम् । यन्मयोक्तं पुरा वीर नारदस्य महात्मनः ॥१
तत्त्वं विज्ञायते येन शुभाशुभमवस्थितम् । निन्दितं च प्रशस्तं च स्त्रीणां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२
मातरं पितरं चैव भ्रातरं मातुलं तथा । द्वौ तु बिम्बौ परीक्षेत समुद्रस्य वचो यथा ॥३
मुहूर्ते तिथिसम्पन्ने नक्षत्रे चाभिपूजिते । द्विजैस्तु सह वागम्य कन्यां वीक्षेत शास्त्रवित् ॥४
हस्तौ पादौ परीक्षेत अङ्गुलीर्नखमेव च । [1]पाणिमेव च जङ्घे च कटिनासोरु एव च ॥५

चिकने, काले, जिसका अग्रभाग फटा न हो, कोमल एवं अधिकता न हो, तो ऐसे केश वाला मनुष्य राजा होता है ।२७। अधिक कपिल, (भूरा) मोटे, विषम, अग्रभाग फूटे, कड़े, छोटे, अत्यन्त टेढ़े और घन केश

जघनोदरपृष्ठं च स्तनौ कर्णौ भुजौ तथा । जिह्वां चोष्ठौ च दन्तांश्च कपोलं गलकं तथा ॥६
चक्षुर्नासा ललाटं च शिरः केशांस्तथैव च । रोमराजिं[1] स्वरं वर्णमावर्तानि तु वा पुनः ॥७
यस्यास्तु रेखाग्रीवायां या[2] च रक्तान्तलोचना । यस्य सा गृहमागच्छेत्तद्गृहं सुखमेधते ॥८
ललाटे दृश्यते यस्यास्त्रिशूलं देवनिर्मितम् । बहूनां स्त्रीसहस्राणां स्वामिनीं तां विनिर्दिशेत् ॥९
राजहंसगतिर्यस्या मृगाक्षी मृगवर्णिका । समशुक्लाग्रदन्ता च कन्यां तामुत्तमां विदुः ॥१०
मण्डूककुक्षी या कन्या न्यग्रोधपरिमण्डला । एकं जनयते पुत्रं सोऽपि राजा भविष्यति ॥११
हंसस्वरा मृदुवचा या कन्या मधुपिङ्गला । अष्टौ जनयते पुत्रान्धनधान्यविवर्धिनी ॥१२
आयतौ श्रवणौ यस्याः सुरूपा चापि नासिका । भ्रुवौ चेन्द्रायुधाकारौ सात्यन्तं सुखभागिनी ॥१३
तन्वी श्यामा तथा कृष्णा स्निग्धाङ्गी मृदुभाषिणी । शङ्खकुन्देन्दुदशना भवेदैश्वर्यभागिनी ॥१४
विस्तीर्णं जघनं यस्या वेदिमध्या तु या भवेत् । आयते विपुले नेत्रे राजपत्नी तु सा भवेत् ॥१५
यस्याः पयोधरे वामे हस्तेकर्णे गलेऽपि वा । मशकं तिलकं वापिसा पूर्वं जनयेत्सुतम् ॥१६
गूढगुल्फाङ्गुलिशिरा अल्पपार्ष्णिः सुमध्यमा । रक्ताक्षी रक्तचरणा सात्यन्तं सुखभागिनी ॥१७
कूर्मपृष्ठायतनखौ स्निग्धभावविवर्जितौ । वक्राङ्गुलितलौ पादौ कन्यां तां परिवर्जयेत् ॥१८
येन केनचिदंशेन मांसं यस्या विवर्धते । रासभीं तादृशीं विद्यान्न सा कल्याणमर्हति ॥१९

कमर, नाक, घुटना, उदर, पीठ, स्तन, कान, भुजा, जीभ, ओठ, दाँत, कपोल, कण्ठ, आँख, मस्तक, शिर, केश, रोमावली, स्वर, वर्ण और नाभि की परीक्षा करे।५-७। जिसके गले में रेखा तथा आँख के समीप का भाग लाल रंग हो, वैसी स्त्री जिस घर में आती है उस घर में उत्तरोत्तर सुख की वृद्धि होती है।८। जिसके भाल में त्रिशूल का चिह्न हो, वह अनेक सहस्र स्त्रियों की अधिकारिणी होती है।९। जिसकी राजहंस की भाँति गति (चाल), मृग के समान आँखें तथा वर्ण एवं सम और कांतिमान सामने वाले दाँत हों वह उत्तम

पादे प्रदेशिनी यस्या अङ्गुष्ठं समतिक्रमेत् । दुःशीला दुर्भगा ज्ञेया कन्यां तां परिवर्जयेत् ॥२०
पादे मध्यमिका यस्याः क्षितिं न स्पृशते यदि । रमते सा न कौमारे स्वच्छन्दा[1] कामचारिणी ॥२१
पादे अनामिका यस्याः क्षितिं न स्पृशते यदि । द्वितीयं पुरुषं हत्वा तृतीये सा प्रतिष्ठिता ॥२२
पादे कनिष्ठा यस्यास्तु क्षितिं न स्पृशते यदि । द्वितीयं पुरुषं हत्वा तृतीये सा प्रतिष्ठिता ॥२३
न देविका न धनिका न धान्यप्रतिनामिका । गुल्मवृक्षसनाम्नी च कन्यां तां परिवर्जयेत् ॥२४
इन्द्रचन्द्रादिपुरुषसनाम्नी च यदा भवेत् । नैताःपतिषु रज्यन्ते याश्च नक्षत्रनामिकाः ॥२५
आवर्तः पृष्ठतो यस्या नाभिं समनुविन्दति । तदपत्यं भवेद्ध्रस्वं ह्रस्वायुश्च विनिर्दिशेत् ॥२६
पृष्ठावर्ता पतिं हन्ति नाभ्यावर्ता पतिव्रता । कटयावर्ता तु स्वच्छन्दा न कदाचिद्विरज्यते ॥२७
यस्यास्तु हसमानाया गण्डे जायेत् कूपकम् । रमते सा न कौमारे स्वच्छन्दा कार्यकारिणी ॥२८
यस्यास्तु गच्छमानायाष्टिट्टीकायति जङ्घिका । पुत्रं व्यवस्येत्सा कर्तुं पतित्वे नात्र संशयः ॥२९
स्थूलपादा च या कन्या सर्वांगेषु च लोमशा । स्थूलहस्ता च या स्याद्वै दासीं तां निर्दिशेद्बुधः ॥३०
यस्याश्चोत्कटकौ[2] पादौ मुखं च विकृतं भवेत् । उत्तरोष्ठे च रोमाणि सा क्षिप्रं भक्षयेत्पतिम् ॥३१
त्रीणि यस्याः प्रलम्बन्ते ललाटमुदरं स्फिचौ । त्रीणि भक्षयते सा तु देवरं श्वशुरं पतिम् ॥३२

अयोग्य है, जानना चाहिए ।१९। जिसके चरण की तर्जनी अंगुली अंगूठे के ऊपर चढ़ी रहती है, उसे दुःशीला और भाग्यहीन जानकर छोड़ देना चाहिए ।२०। जिसके चरण की मध्यमा पृथ्वी में न छू जाय, वह कुमारावस्था में रमण तो नहीं करती, पर आगे चलकर स्वतंत्र व्याभिचारिणी होती है ।२१। जिसकी अनामिका यदि पृथ्वी में न छू जाय तो वह दूसरे पति को भी मार कर तीसरे के साथ रहे ।२२। जिसकी कनिष्ठा भी पृथ्वी में न छू जाय वह भी दूसरे पति को मार कर तीसरे पति के साथ रहती है ।२३। किसी

समुद्भूषितचारित्रा गुरुभक्ता पतिव्रता । देवब्राह्मणभक्ता च मानुषीं तां विनिर्दिशेत् ॥३३
नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च प्रियवादिनी । अल्पाशिन्यल्परोषा च देवतां तां विनिर्दिशेत् ॥३४
प्रच्छन्नं कुरुते पापमपवादं च रक्षति । हृदयं स्याच्च दुर्ग्राह्यं मार्जारीं तां विनिर्दिशेत् ॥३५
हसते क्रीडते चैव क्रुद्धा चैव प्रसीदति । नीचेषु रमते नित्यं रासभीं तां विनिर्दिशेत् ॥३६
प्रतिकूलकरी नित्यं बन्धूनां भर्तुरेव च । स्वच्छन्दे ललितां चैव आसुरीं तां विनिर्दिशेत् ॥३७
[1]बह्वाशी बहुवाक्या च नित्यं चाप्रियवादिनी । हिनस्ति स्वपतिं या तु राक्षसीं तां विनिर्दिशेत् ॥३८
शौचाचारपरिभ्रष्टा रूपभ्रष्टा भयङ्करा । प्रस्वेदमलपङ्का च पिशाचीं तां विनिर्दिशेत् ॥३९
नित्यं स्नातां सुगन्धां च मांसमद्यप्रियादिनीम् । वृक्षोद्यानप्रसक्तां च गान्धर्वीं तां विनिर्दिशेत् ॥४०
चपला चञ्चला चैव नित्यं पश्येद्दिशस्तथा । चलस्वभावा लुब्धा[2] च वानरीं तां विनिर्दिशेत् ॥४१
चन्द्राननां शुभाङ्गीं तु मत्तवारणगामिनीम् । आरक्तनखहस्तां तु विद्याद्विद्याधरीं बुधः ॥४२
वीणावादित्रशब्देन वंशगीतरवेण च । पुष्पधूपप्रसक्तां च गान्धर्वीं तां विनिर्दिशेत् ॥४३

देवता एवं ब्राह्मणों की भक्ति करने वाली स्त्री को मानुषी स्त्री बताया गया है ।३३। उसी प्रकार नित्य स्नान एवं सुगंध सेवन करने वाली मधुर बोलने वाली, अल्प भोजन और अल्प क्रोध करने वाली स्त्री को देवता बताया गया है ।३४। गुप्त पाप करने वाली, निन्दित कर्म करके उससे बचाव करने वाली तथा जिसके हृदय का भाव जल्दी न जाना जा सके, उसे मार्जारी (बिल्ली) जानना चाहिए ।३५। हँसते और

सुमन्तुरुवाच

इत्येवमुक्त्वा स महानुभावो जगाम वेधा निजमन्दिरं वै ।
स्त्रीणां तथा पुंस्त्ववतां च वीर यल्लक्षणं पार्थिव लोकपूज्यम् ॥४४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थी कल्पे स्त्रीलक्षणवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।२८।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

गणपतिकल्पवर्णनम्

शतानीक उवाच

गकाराक्षरदेवस्य गणेशस्य महात्मनः । आराधनविधिं ब्रूहि साङ्गं मन्त्रसमन्वितम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते । यथेष्टं[1] चेष्टतः सिद्धिः सदा भवति कामिका ॥२
श्वेतार्कमूलं सङ्गृह्य कुर्याद्गणपतिं बुधः । अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु पद्मासनगतं तथा ॥३
चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च सर्वाभरणभूषितम् । नागयज्ञोपवीताङ्गं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥४
दन्तं सव्ये करे दद्याद्द्वितीये चाक्षसूत्रकम् । तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं न्यसेत् ॥५

सुमन्तु ने कहा—हे वीर ! इस प्रकार ब्रह्मा स्त्रियों और पुरुषों के उन लक्षणों को, जो लोगों को प्रिय हैं, कह कर अपने भवन चले गये ।४४

कुङ्कुमं चन्दनं चापि समालम्भनमुच्यते । वासोभिर्भूषणै रक्तैर्माल्यैश्चाराधयेद्गणम् ॥६
धूपेन च सुगन्धेन मोदकैश्चापि पूजयेत् । एवं पूज्याग्रतस्तस्य भोजयेद्ब्राह्मणं बुधः ॥७
वामनं कुब्जकं चापि भोजयेत्पुरतो द्विजम् । आशीर्वादं ततस्तस्मात्प्राप्य सिद्धिमवाप्नुयात् ॥८
भक्त्या कुरुकुलश्रेष्ठ [1]शृणुमन्त्रपदानि वै । गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं प्रणवेन समन्वितः ॥९
गां नमो हृदयं ज्ञेयं गीं शिरः परिकीर्तितम् । शिखा च गूं नमो ज्ञेयो गैं नमः कवचं स्मृतम् ॥१०
गौं नमो नेत्रमुद्दिष्टं गः फट् कामास्त्रमुच्यते । आगच्छोल्कामुखायेति मन्त्र आवाहने ह्ययम् ॥११
गं गणेशाय नमो गन्धमन्त्रः प्रकीर्तितः । पुष्पोल्काय नमः पुष्पमन्त्र एष प्रकीर्तितः ॥१२
धूपोल्काय नमो धूपमन्त्र एष प्रकीर्तितः । दीपोल्काय नमो दीपमन्त्र एष प्रकीर्तितः ॥१३
ॐ गं महोल्काय नमो बलिमन्त्रः प्रकीर्तितः । ओं संसिद्धोल्काय नमोमन्त्रश्चायं विसर्जने ॥१४
ओं महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् गायत्री जपः पूर्वतः ॥१५
महागणपतये वीर[1] स्वाहा दक्षिणतः सदा । महोल्काय पश्चिमतः कूश्माण्डायोत्तरेण तु ॥
एकदन्तत्रिपुरान्तकाय आग्नेय्यां वीर निर्दिशेत् ॥१६
ओं शिवदत्त विकटहरहास प्राणाय स्वा नैर्ऋत्याम् । [2]तुलम्बनात्यचलदन्तकाय स्वाहा वायव्याम् ॥१७
पद्मदन्ष्ट्राय नरायेति ऐशान्यां होमयेद्बुधः । हुं फट् हुँ फट् हस्ततालध्वनिर्हसनकूर्दनः ॥१८

मोदक (लड्डू) रखे।५। पश्चात् कुंकुम, चन्दन, वस्त्र, आभूषण और लाल फूलों की माला से गणपति की सावधान होकर आराधना करनी चाहिए। धूप, सुगंधित वस्तु (इत्र) एवं लड्डू से पूजा करके उन्हीं के सामने ब्राह्मणों को भोजन कराये।६-७। उस समय वामन (नाटे) और कूबड़े ब्राह्मण को भी उनके सामने भोजन

मृदनर्तनगणपतिर्देवस्य मुद्रां ततो होमं समाचरेत् । न यदा वश्या भवति ॥
कृष्णतिलाहुतिमष्टसहस्रं जुहुयात्त्रिरात्रेण राजा वश्यो भवति ॥१९
तिलयवहोमेन सर्वे जनपदा वश्या भवन्ति । अति रूपवती कन्या गच्छन्तमनुच्छति ॥२०
चणतन्दुलहोमेनाजितो भवेत् । निम्बपत्रसमैस्तैलैर्विद्वेषणं करोति ॥
सोमग्रहणे उदकमध्ये अवतीर्य अष्टसहस्रं जपेत् । सङ्ग्रामे अपराजितो भवति ॥२१

(ॐ लम्बराज्ञे नमः ।)

आदित्याभिमुखो भूत्वा अष्टसहस्रं जपेत् । आदित्यो वरदो भवति ॥२२
शुक्लचतुर्थ्यामुपोष्य गन्धपुष्पादिभिरर्चनं कृत्वा तिलतन्दुलाञ्जुहुयात् । शिरसा धारयंस्तैर-
पराजितो भवति ॥२३
अपामार्गसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य एकविंशत्याहुतीर्यो जुहुयात् । त्रिरात्राच्छत्रुं व्यापादयति ॥२४
अथोत्तरेण मन्त्रं व्याख्यास्ये । वृक्षमूले कज्जलं सङ्गृह्य सप्तभिर्मन्त्रितं कृत्वा नेत्राण्यञ्जयेद्यं
पश्यति स वशी भवति ॥२५
पुष्पं फलं मूलं चाष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा यस्मै ददाति स वश्यो भवति ॥२६
यत्किञ्चिन्मूलमन्त्रेण करोति तत्सिध्यति । सर्वे ग्रहाः सुप्रीता भवन्ति ॥
नगरद्वारं गत्वा अष्टसहस्रं द्वारं निरूपयेत् ॥२७
पुरं द्वारेण गृह्यते प्राङ्मुखो यजति स उच्चाटयति । सम्मुखो जपति चोरान्विद्रावयति ॥२८

तिल से तीन रात तक आठ हजार आहुति डाले, इससे राजा वश में होता है ।१९। तिल और जवा से होम

तृणानि लूनयति । काष्ठानि च्छेदयति ॥२९
[1]गजराजेन युद्धयति । जलमध्ये सप्तरात्रं जपेत् । अकाले वर्षयति । कूपतडागाञ्छोषयति ॥
प्रतिमां नृत्ययति । आकर्षयति । स्तम्भयति । योजनशतात्स्त्रीपुरुषानाकर्षयति ॥३०
गोरोचनां च सहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा हस्ते बद्धा योजनशतसहस्रं गत्वा पुनरागच्छति ॥३१
अथ मारयितुकामः खदिरकीलकं कृत्वा स्त्रीपुरुषं विचिन्त्य हृदये निखनयेत् । क्षणादेव म्रियते ॥३२
सर्वपातकविमुक्तो भवति । अग्नितेजाः सर्वेभ्योऽपराजितो भवति ॥३३
ॐ वक्रतुण्डाय स्वाहा । ॐ एकदंष्ट्राय स्वाहा । ॐ कृतकृष्णाय स्वाहा । ॐ गजकर्णाय स्वाहा ॥
ॐ लम्बोदराय स्वाहा । ॐ विकटाय स्वाहा । ॐ धूम्रवर्णाय स्वाहा । ॐ गगनकूजाय स्वाहा ॥
ॐ विनायकाय स्वाहा । ॐ गणपतये स्वाहा । ॐ हस्तिमुखाय स्वाहा ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे
गणपतिकल्पवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

विनायकपूजाविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

निम्बमयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा नित्यधूपगन्धादिभिरर्चयित्वा प्रच्छन्नं शिरसि बद्धा गच्छेत् ॥

और हाथी की लड़ाई करा देता है । जल के बीच में सात रात जप करने से अकाल वर्षा, कूएँ-तालाब का

सर्वजनप्रियो भवति। श्वेतार्कमूलाङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कृत्वा धूपादिभिरर्चयित्वा सर्वान्वर्णान्वशमानयति॥
श्वेतचन्दनमङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कृत्वा पुष्पगन्धादिभिरर्चयित्वा शुक्लचतुर्थ्यामष्टम्यां वा बलिं कुर्यादष्टसहस्रं जुहुयाद्दध्ना पायसेन राजानं वशमानयति।
रक्तचन्दनमयं गणपतिमङ्गुष्ठमात्रं कृत्वा भौतिकं बलिं दद्याद्दधिमधुघृताहुतीनां गणपतिमष्टसहस्रं जुहुयादात्मप्रापिकां प्रजां वशमानयति। रक्तकरवीरमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत्॥
रक्तपुष्पगन्धोपहारैर्बलिं दद्यात्। तिललवणघृतेनाष्टसहस्रं जुहुयात्। दशग्रामान्वशमानयति॥
श्वेतकरवीराङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा तिलपिष्टदधिघृतक्षीरहरिद्रामिश्रेणाष्टसहस्रं जुहुयाद्वेश्यां वशमानयति॥
अश्वत्थमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वागन्धपुष्पधूपबलिं दत्त्वा शतं जुहुयाच्छत्रुं वशमानयति॥
अर्कमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपबलीन् दद्यात्। तिन्दुकाष्टशतं जुहुयाच्छत्रुं वशमानयति॥
बिल्वमूलमयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपार्चितं कृत्वा त्रिमध्वक्तानामष्टसहस्रं जुहुयाद्राजामात्यान्वशमानयति॥

शिरसि धूपान्धृत्वा गच्छेद्राजद्वारं विग्रहे जयो भवति।
हस्तिदन्तमृत्तिकामयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत्॥

बनाकर नित्य धूप एवं गंधादि से पूजन करते हुए उसे शिर में गुप्त रूप से बाँध कर (कहीं भी) जाये तो वह मनुष्य सभी लोगों का प्रिय होता है। सफेद अर्क (मदार) के जड़ की उतनी ही बड़ी मूर्ति गणेश जी की बनाकर धूप आदि से पूजन करे तो सभी जाति के लोग वश में होते हैं। शुक्लपक्ष की चतुर्थी अथवा

गन्धपुष्पधूपार्चितं कृत्वा कृष्णचतुर्थ्यां नग्नो भूत्वाभ्यर्चयेत्।
सप्त वाराञ्जपेन्नित्यं[1] नारीणां सुभगो भवति॥
वृषभशृङ्गमृत्तिकाङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कारयेत्।
गन्धपुष्पार्चितं कृत्वा गुग्गुलुधूपं दद्याद्घोषपतिं वशमानयति॥

अथ वा वल्मीकमृत्तिकांगुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत्। कटुकतैलेन प्रतिमां लेपयेत्॥ उन्मत्तककाष्ठेनाग्निं प्रज्वाल्याहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात्तिलसर्षपमिश्रेण सर्वधूपं दद्यात्त्रिकटुकेन लेपयेत्॥ अगरुधूपं दद्याद्राजानं वशमानयति। परेषां च वल्लभो भवति। रक्तचन्दनेनात्मानं धूपयेत्सुभगो भवति॥ ॐ गणपतये वक्रतुण्डाय गजदन्ताय गुलगुलेतिनिनादाय[2] चतुर्भुजाय त्रिनेत्राय मुशलपाश-वज्रहस्ताय सर्वभूतदमनाय सर्वलोकवशंकराय सर्वदुष्टोपघातजननाय सर्वशत्रुविमर्दनाय सर्वराज्य-समीहनाय राजानमिह वशमानय हन हन पच पच वज्राङ्कुशेन गणेश फट् स्वाहा। ॐ गां गीं गूं गैं गौं गः स्वाहा नमः हृदयं मूलमन्त्रस्य।
ॐ कः शिरः, ॐ खः शिखा, ॐ गः हृदयम्, ॐ गुः वक्त्र, ॐ गैं नेत्रम्। ॐ घः कवचम्, ॐ ङः आवाहनं हृदयस्य आवाहनाङ्गानिभवन्ति ॐ नमः हृदयं मूलमन्त्रस्य, ॐ गाः शिरः, ॐ गैः नमः शिखा ॐ गौः नमः कवचम्, ॐ गं नमः नेत्रे, ॐ गः फट् अस्त्रम्॥

तो लड़ाई (वाद-विवाद) में विजय होती है। कृष्णपक्ष की चतुर्थी के दिन नग्न होकर हाथी के दाँत द्वारा खोदी हुई मिट्टी की गणपति की मूर्ति बनाकर गंध, पुष्प और धूप से सात रात पूजन करे तो वह स्त्रियों का प्रिय होता है। बैल के सींग द्वारा खोदी हुई मिट्टी की उसी प्रकार गणपति की मूर्ति बनाकर गन्ध-पुष्प

ॐ अङ्गुष्ठोल्काय स्वाहा आवाहनं हृदयस्य स्वाहा विसर्जनं हृदयस्य ॐ गन्धोल्काय स्वाहा ॥ गन्धमन्त्रः ॥ ॐ धर्मभूतोल्काय स्वाहा ॥ पुष्पमन्त्रः ॥ दुर्जयाय[1] पूर्वेण । ॐ धूर्जटये दक्षिणेन । ॐ लम्बोदराय पश्चिमतः । ॐ गणपतये उत्तरतः । ॐ गणाधिपतये ऐशान्याम् । ॐ महागणपतये आग्नेय्याम् । ॐ कूश्माण्डाय नैर्ऋत्याम् ।
ॐ एकदन्तत्रिपुरघातिने[2] त्रिनेत्राय वायव्याम् । ॐ महागणपतये विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ॥ तन्नोदन्तिः प्रचोदयात् ॥ गायत्री ॥
पद्मदंष्ट्रामालाप्रकर्षणीपरश्वंकुंशपाशपटहमुद्रा अष्टौ मुद्रा दर्शयित्वा ततः कर्माणि कारयेत् ॥
कृष्णतिलाहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् । राजानं वशमानयेत् ॥
आवाहनाद्येकादशमुद्रा नैवेद्यान्तं क्रमाद्दर्शयेत् ॥
आराधयेद्येन विधिना त्रिनेत्रं शूलिनं हरम् । तेनैवाराधयेद्देवं विघ्नेशं गणपं नृप ॥१
तदेव मण्डलं चास्य अङ्गन्यासस्तथैव च । ऋते मन्त्रपदानीह समानं सर्वमेव हि ॥२
पूजयेद्यस्तु विघ्नेशमेकदन्तमुमासुतम् । नश्यन्ति तस्य विघ्नानि न चारिष्टं कदाचन ॥३
यश्चोपवासं कृत्वा तु चतुर्थ्यां पूजयेन्नरः । सर्वे तस्य समारम्भाः सिध्येयुर्नात्र संशयः ॥४
यस्यानुकूलो विघ्नेशः शिवयोः कुलनन्दन । तस्यानुकूलं सर्वं स्याज्जगद्वै सर्वकर्मसु ॥५
तस्मादाराधयेदेनं भक्तिश्रद्धासमन्वितः । कुङ्कुमागुरुधूपेन तथैवोण्डीरकस्रजा ॥
[3]पललोल्लापिकाभिश्च जातिकोन्मत्तकैस्तथा ॥६

अंगुष्ठोल्काय स्वाहा से हृदय का आवाहन और विसर्जन करे। ओं धर्मभूतोल्काय स्वाहा से गंध प्रदान करे। ओं दुर्जुयाय से पूर्व, ओं धूर्जटये से दक्षिण, ओं लम्बोदराय से पश्चिम ओं गणपतये से उत्तर, ओं गणाधिपतये से ईशान, ओं महागणपतये से आग्नेय, ओं कष्माण्डाय से नैर्ऋत्य, ओं एकदं तत्रिपुरघातिने

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु विधिनानेन पूजयेत् । तस्य सिध्यति निर्विघ्नं सर्वकर्म न संशयः ॥७
एकदन्ते जगन्नाथे गणेशे तुष्टिमागते । पितृदेवमनुष्याद्याः सर्वे तुष्यन्ति भारत ॥८
तस्मादाराधयेदेनं सदा भक्तिपुरःसरम् । कर्णलेपैस्तुण्डिकाभिर्मोदकैश्च[1] महीपते ॥
पूजयेत्सततं देवं विघ्नविनाशाय दन्तिनम् ॥९

श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे
विनायकपूजाविधिनिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शिवाचतुर्थी पूजनम्

सुमन्तुरुवाच

शिवा शान्ता सुखा राजंश्चतुर्थी त्रिविधा स्मृता । मासि भाद्रपदे शुक्ला शिवा लोकेषु पूजिता ॥१
तस्यां स्नानं तथा दानमुपवासो जपस्तथा । क्रियमाणं शतगुणं प्रसादाद्दन्तिनो नृप ॥२
गुडलवणघृतानां तु दानं शुभकरं स्मृतम्[2] । गुडापूपैस्तथा वीर पुण्यं ब्राह्मणभोजनम् ॥३
यास्तस्यां नरशार्दूल पूजयन्ति सदा स्त्रियः । गुडलवणपूपैश्च श्वश्रूं श्वशुरमेव च ॥४

उपरोक्त विधान से पूजा की जाये, तो उसके सभी कार्य निर्विघ्न समाप्त होते हैं ।५-७। हे भारत ! हे महीपते ! एक दाँत वाले एवं जगत् के स्वामी गणेश के प्रसन्न होने पर पितर, देवता और मनुष्य सभी संतुष्ट रहते हैं ।८। अतः विघ्नों के विनाश होने के लिए भक्तिपूर्वक एक दाँत वाले (गणेश) देव की पूजा,

ताः सर्वाःसुभगाः स्युर्वै[१] विघ्नेशस्यानुमोदनात् । कन्यका तु विशेषेण विधिनानेन पूजयेत् ॥५

(इति शिवाकल्पः)

सुमन्तुरुवाच

माघे मासि तथा शुक्ला या चतुर्थी महीपते । सा शान्ता शान्तिदा नित्यं शान्तिं कुर्यात्सदैव हि ॥६
स्नानदानादिकं कर्म सर्वमस्यां कृतं विभो । भवेत्सहस्रगुणितं प्रसादात्तस्य[२] दन्तिनः ॥७
कृतोपवासो यस्तस्यां पूजयेद्विघ्ननायकम् । तस्य होमादिकं कर्म भवेत्साहस्रिकं नृप ॥८
लवणं च गुडं शाकं गुडपूपांश्च भारत । दत्त्वा भक्त्या तु विप्रेभ्यः फलं साहस्रिकं भजेत्[३] ॥९
विशेषतः स्त्रियो राजन्पूजयन्तो गुरुं नृप । गुडलवणघृतैर्वीर सदा स्युर्भाग्यसंयुताः[४] ॥१०

(इति शान्ताकल्पः)

सुमन्तुरुवाच

सुखावहा च सुसुखा सौभाग्यकरणी परम् ॥११
चतुर्थी कुरुशार्दूल रूपसौभाग्यदा शुभा । सुखाव्रतं महापुण्यं रूपदं भाग्यदं तथा ॥१२
सुसूक्ष्मं सुकरं धन्यमिह पुण्यसुखावहम् । परत्र फलदं वीर दिव्यरूपप्रदायकम् ॥१३
हसितं ललितं चोक्तं[५] चेष्टितं च सुखावहम् । सविलासभुजक्षेपश्चंक्रमश्चेष्टितं शुभम् ॥१४
सुखाव्रतेन सर्वेषां सुखं कुरुकुलोद्वह । कृत्येन पूजिते चेशे विघ्नेशे शिवयोः सुते ॥१५

वे सभी निश्चित सौभाग्यशालिनी होती हैं । विशेषकर कन्याओं को इस विधि से अवश्य पूजन करना चाहिये ।४-५। (इति शिवाकल्प)

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! माघ के महीने की शुक्ल पक्ष की चौथ का नाम शांतिदायिनी होने से

यथा शुक्लचतुर्थ्यां तु वारो भौमस्य वै भवेत् । तदा सा सुखदा ज्ञेया चतुर्थी वै सुखेति च ॥१६
पुरा मैथुनमाश्रित्य स्थिताभ्यां तु हिमाचले । भीमोमाभ्यां महाबाहो रक्तबिन्दुश्च्युतः क्षितौ ॥१७
मेदिन्यां स प्रयत्नेन सुखे विधृतोऽनया । जातोस्याः स कुजो वीर रक्तो रक्तसमुद्भवः ॥१८
ममाङ्गतो यथोत्पन्नस्तस्मादङ्गारको ह्ययम् । अङ्गदोङ्गोपकारश्च अङ्गानां तु प्रदो नृणाम् ॥१९
सौभाग्यादिकरो यस्मात्तस्मादङ्गारको मतः । भक्त्या चतुर्थ्यां नक्तेन यो वै श्रद्धासमन्वितः ॥२०
उपवत्स्यति ना राजन्नारी वा नान्यमानसा । पूजयेच्च कुजं भक्त्या रक्तपुष्पविलेपनैः ॥२१
गणेशं प्रथमं भक्त्या योजयेच्छ्रद्धयान्वितः । यस्य तुष्टः प्रयच्छेत्स सौभाग्यं रूपसम्पदम् ॥२२
पूर्वं च कृतसङ्कल्पः स्नानं कृत्वा यथाविधि । गृहीत्वा मृत्तिकां वन्देन्मन्त्रेणानेन भारत ॥२३
इह त्वं वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरता किल । तस्मान्मे दह पाप्मानं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥२४
इमं मन्त्रं पठन्वीर आदित्याय प्रदर्शयेत् । आदित्यरश्मिसम्पूतां गङ्गाजलकणोक्षिताम् ॥२५
दत्त्वा मृदं शिरसि तां सर्वाङ्गेषु च योजयेत् । ततः स्नानं प्रकुर्वीत मन्त्रयेत जलं पुनः ॥२६
त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवद्यौकसाम् । स्वेदाण्डजोद्भिदां चैव रसानां पतये नमः ॥२७
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रस्रवणेषु च । तडागेषु च सर्वेषु मानसादिसरःसु च ॥२८
नदीषु देवखातेषु सुतीर्थेषु ह्रदेषु वै । ध्यायन्पठन्निमं मन्त्रं ततः स्नानं समाचरेत् ॥२९
ततः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा गृहमागत्य वै स्पृशेत् । दूर्वाश्चत्थौ शमीं स्पृष्ट्वा गां च मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३०
दूर्वां नमस्य मन्त्रेण शुचौ भूमौ समुत्थिताम् । त्वं दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदेवैस्तु वन्दिता ॥३१

शुक्ल पक्ष में मंगल के दिन वाली चौथ को सुखा कहते हैं जो सुख प्रदान करती है ।१६। हे महाबाहो !

वन्दिता दह तत्सर्वं दुरितं यन्मया[1] कृतम् ॥३२
शमीमन्त्रं प्रवक्ष्यामि तन्निबोध महीपते । पवित्राणां पवित्रां त्वं काश्यपी प्रथिता श्रुतौ ॥
शमी शमय मे पापं नूनं वेत्सि धराधरान् ॥३३
अश्वत्थालम्भने वीर मन्त्रमेतं निबोध मे । नेत्रस्पन्दादिजं दुःखं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम् ॥
शक्तानां च समुद्योगमश्वत्थ त्वं क्षमस्व मे ॥३४
इमं मन्त्रं पठन्वीर कुर्याद्वै स्पर्शनं बुधः । ततो देव्यै तु गां दद्याद्वीरं कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥
समालभ्य तु हस्तेन ततो मन्त्रमुदीरयेत् ॥३५
सर्वदेवमयी देवि मुनिभिस्तु सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि वन्दे त्वां वन्दिता पापहा भव ॥३६
इमं मन्त्रं पठन्वीर[2] भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यादर्जुनं कुरुनन्दन ॥
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी स्यान्न संशयः ॥३७
एवं मौनेन चागत्य ततो वह्निगृहं व्रजेत् । प्रक्षाल्य च मृदा पादावाचान्तोग्निगृहं विशेत् ॥
होमं तत्र प्रकुर्वीत एभिर्मन्त्रपदैर्वरैः[3] ॥३८
शर्वाय शर्वपुत्राय क्षोण्युत्सङ्गभवाय च । कुजाय ललिताङ्गाय लोहिताङ्गाय वै तथा ॥३९
ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैः स्वाहाकारसमन्वितैः । अष्टोत्तरशतं वीर अर्धार्धमर्धमेव च ॥४०
एतैर्मन्त्रपदैर्भक्त्या शक्त्या वा कामतो नृप । खादिरैः सुसमिद्भिस्तु चाज्यदुग्धैर्यवैस्तिलैः ॥४१
भक्ष्यैर्नानाविधैश्चान्यैः शक्त्या भक्त्या समन्वितः । हुत्वाहुतीस्ततो[4] वीर देवं संस्थापयेत्क्षितौ ॥४२
सौवर्णं राजतं वापि शक्त्या दारुमयं नृप । देवदारुमयं वापि श्रीखण्डचन्दनैरपि ॥४३

नामासि' इस मंत्र से वन्दना करके शमी की वन्दना करे, उनके मंत्रों को भी कहता हूँ सुनो ! हे वीर !

ताम्रे पात्रे रौप्यमये चाज्यकुङ्कुमकेसरैः । अन्यैर्वा लोहितैर्वापि पुष्पैः पत्रैः फलैरपि ।।
रक्तैश्च विविधैर्वीर अथ वा शक्तितोऽर्चयेत्[1] ।।४४
वरद्विसृजते वित्तं वित्तवान्वीर भक्तितः । तावद्विवर्धते पुण्यं दातुं शतसहस्रिकम् ।।४५
अन्ये ताम्रमये पात्रे वंशजे मृन्मयेऽपि वा । पूजयन्ति नराः शक्त्या कृत्वा कुङ्कुमकेशरैः ।।
पुरुषाकृतिकृतं पात्र इमं मन्त्रैः समर्चयेत् ।।४६
अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिस्तथा । धूपैरभ्यर्च्य विधिवद्ब्राह्मणाय प्रदीयते ।।४७
गुडौदनं घृतं क्षीरं गोधूमाञ्छालितण्डुलान् । अवेक्ष्य शक्तिं दद्याद्वै दरिद्रो वित्तवांस्तथा ।।४८
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विद्यमाने धने नृप । वित्तशाठ्यं हि कुर्वाणो नामुत्र बलभाग्भवेत् ।।४९

शतानीक उवाच

अङ्गारकेण संयुक्ता चतुर्थी नक्तभोजनैः । उपोष्या कतिमात्रा तु उताहो सकृदेव तु[2] ।।५०

सुमन्तुरुवाच

चतुर्थी सा चतुर्थी सा यदाङ्गारकसं युता । उपोष्या तत्र तत्रैव प्रदेयो विधिवद्गुडः ।।५१
उपोष्य नक्तेन विभो चतस्रः कुजसंयुता । चतुर्थ्यां च चतुर्थ्यां च विधानं शृणु यादृशम् ।।५२
सौवर्णं तु कुजं कृत्वा सविनायकमादरात् । दशसौवर्णिकं मुख्यं दशार्धमर्धमेव च ।।५३
सौवर्णपात्रे रौप्ये वा भक्त्या ताम्रमयेऽपि वा । विंशत्पलानि पात्राणि विंशत्यर्धपलानि वा ।।५४

केसर, लाल फूल एवं फल तथा पत्ते अथवा शक्ति के अनुसार (जो कुछ मिले) पूजन करे।३८-४४। हे वीर! धनवान् पुरुष (इसमें) जितना ही व्यय करता है उसका उससे हजारों गुना पुण्य बढ़ता है ।४५। तांबे, बाँस के बने एवं मिट्टी के पात्र में भी कुंकुम और केशर द्वारा मनुष्य लोग उनकी पूजा करते हैं ।

विंशत्कर्षाणि वा वीर विंशदर्धार्धमेव वा । रौप्यसङ्ख्यं पलं कार्यं पलार्धमर्धमेव च ॥५५
शक्त्या वित्तैश्च भक्त्या च पात्रे ताम्रमयेऽपि तु । प्रतिष्ठाप्य ग्रहेशं वै वस्त्रैः सम्परिवेष्टितम् ॥
विविधैः साधकै रक्तैः पुष्पै रक्तैः समन्वितम् ॥५६
ब्राह्मणाय सदा दद्याद्दक्षिणासहितं नृप । वाचकाय महाबाहो गुणिने श्रेयसे नृप ॥५७
इति ते कथिता पुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः । यामुपोष्य नरो रूपं दिव्यमाप्नोति भारत ॥५८
कान्त्यात्रेयसमं वीरं तेजसा रविसन्निभम् । प्रभया रविकल्पं च समीरबलसंश्रितम् ॥५९
ईदृग्रूपं समाप्येह याति भौमसदो नृप । प्रसादाद्विघ्ननाथस्य तथा गणपतेर्नृप ॥६०
पठतां शृण्वतां राजन्कुर्वतां च विशेषतः । ब्रह्महत्यादिपापानि क्षीयन्ते नात्र संशयः ॥
ऋद्धिं वृद्धिं तथा लक्ष्मीं लभते नात्र संशयः । ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे सुखावहाङ्गारकचतुर्थीव्रतनिरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।३१।

(समाप्तश्चायं चतुर्थीकल्पः)

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीपूजनम्

सुमन्तुरुवाच

पञ्चमी दयिता राजन्नागानां नन्दिवर्धनी । पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्सवो महान् ॥१

चाँदी एवं ताँबे के पात्र में वस्त्र लपेट कर रखे । हे वीर ! वह पात्र भी बीस या दश पल अथवा बीस, दश या पाँच कर्ष सुवर्ण का होना चाहिये । चाँदी का पात्र बीस, दश या पाँच पल का ही होता है इस भाँति ताँबे का

वासुकिस्तक्षकश्चैव कालियो मणिभद्रकः । ऐरावतो धृतराष्ट्रः[१] कर्कोटकधनञ्जयौ ॥
एते प्रयच्छन्त्यभयं प्राणिनां प्राणजीविताम् ॥२
पञ्चम्या स्नपयन्तीह[२] नागान्क्षीरेण ये नराः । तेषां कुले प्रयच्छन्ति तेऽभयप्राणदक्षिणाम् ॥३
शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् । निर्वापयन्ति स्नपनैर्गवां[३] क्षीरेण मिश्रितैः ॥४
ये स्नपयन्ति वै नागान्भक्त्या श्रद्धासमन्विता । तेषां कुले सर्पभयं न भवेदिति निश्चयः ॥५

शतानीक उवाच

मात्रा शप्ताः कथं नागाः किं समुद्दिश्य कारणम् । कथं चानन्दकरणं कस्य वा सम्प्रसादजम् ॥६

सुमन्तुरुवाच

उच्चैःश्रवा अश्वरत्नं श्वेतो जातोऽमृतोद्भवः । तं दृष्ट्वा चाब्रवीत्कद्रूनागानां जननी स्वसाम्[४] ॥७
अश्वरत्नमिदं श्वेतं सम्प्रेक्षेऽमृतसम्भवम् । कृष्णांश्च वीक्षसे बालान्सर्वंश्वेतमुताम्बरे ॥८

विनतोवाच

सर्वश्वेतो ह्ययवरो नास्य कृष्णो न लोहितः । कथं पश्यसि कृष्णं त्वं विनतोवाच तां स्वसाम् ॥९

कद्रूरुवाच

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णबालसमन्वितम् । द्विनेत्रा त्वं तु विनते न पश्यसि पणं कुरु ॥१०

इसीलिए पञ्चमी के दिन नागों का निश्चित महान् उत्सव सुसम्पन्न होता है ।१। वासुकि, तक्षक, कालियानाग, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय ये सभी नागदेव सभी प्राणियों को अभय प्रदान करते हैं ।२। अतः जो लोग पञ्चमी में नागों को दूध से स्नान-पूजन कराते हैं उनके कुल को वे सदैव अभयपूर्वक प्राण दान देते रहते हैं ।३। इसलिए उसीदिन माता के शाप द्वारा रात-दिन पीड़ित रहने वाले नागों को जो श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक गाय के दूध या जल से स्नान कराता है निश्चित ही उसके

विनतोवाच

अहं दासी भवित्री ते कृष्णे केशे प्रदर्शिते । न चेद्दर्शयसे कद्रु मम दासी भविष्यसि ॥११
एवं ते विपणं कृत्वा गते क्रोधसमन्विते । विनता शयने सुप्ता कद्रूर्जिह्ममचिन्तयत् ॥१२
आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हयोत्तमे । तिष्ठध्वं विपणे जेष्ये विनतां जयगर्द्धिनीम् ॥१३
प्रोचुस्ते जिह्मबुद्धिं तां नागा मातां[1] विगृह्य तु । अधर्म्यमेतन्मातस्ते न करिष्याम ते वचः ॥१४
ताञ्छशाप रुषा कद्रूः पावको वः प्रधक्ष्यति । गते बहुतिथे काले पाण्डवो जनमेजयः ॥१५
सर्पसत्रं स कर्ता वै भुवि ह्यन्यैः सुदुष्करम् । तस्मिन्सत्रे स तिग्मांशुः पावको वः प्रधक्ष्यति ॥१६
एवं शप्त्वा रुषा कद्रूः किञ्चिन्नोक्तवती तु सा । मात्रा शप्तास्तथा नागाः कर्तव्यं नान्वपत्सत ॥१७
वासुकिं दुःखितं ज्ञात्वा ब्रह्मा प्रोवाच सान्त्वयन् । मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मद्वचनं परम् ॥१८
यायावरकुले जातो जरत्कारूरिति द्विजः । भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधिः ॥१९
भगिनीं च जरत्कारु तस्मै त्वं प्रतिदास्यसि । भविता तस्य पुत्रोऽसावास्तीक इति विश्रुतः ॥२०
स तत्सत्रं प्रवृद्धं वै नागानां भयदं महत् । निषेधेत्सुमतिर्वाग्भिरग्याभिस्तं नविष्यति ॥२१
तदिमां भगिनीं राजंस्तस्य त्वं प्रतिदास्यसि । जरत्कारुं जरत्कारोः प्रदद्या अविचारयन् ॥२२

विनता ने कहा—यदि उसके काले बाल को तू दिखायेगी तो मैं आजीवन तेरी दासी रहूँगी नहीं तो तू मेरी दासी होगी ।११। इस प्रकार उन दोनों ने क्रुद्ध होकर बाजी लगाया और जब विनता शयनागार में सो गयी तब कद्रू ने छल करने की सोची ।१२। अपने लड़कों को बुलाकर कहने लगी कि बाल की भाँति पहले हो कर उस सुन्दर घोड़े के अंग में चिपट जाओ, जिससे इस बाजी में जय का लोभ करने वाली उस विनता को जीत लूँ ।१३। इसे सुनकर नागों ने छल करने वाली अपनी उस माँ से कहा—माता ! ऐसा

यदासौ प्रार्थतेऽरण्ये यत्किञ्चिद्धि वदिष्यति । तत्कर्तव्यमशङ्केन यदीच्छेः श्रेय आत्मनः ॥२३
पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च । तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्नं च परमास्थितः ॥२४
तच्छ्रुत्वा पन्नगाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्लोचनाः । पुनर्जातमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ॥२५
तत्र सत्रं महाबाहो[1] तव पित्रा प्रवर्तितम् । ऋत्विग्भिः स हि तेनेह सर्वलोकेषु[2] दुष्करम् ॥२६
प्रोक्तं च विष्णुना पूर्वं धर्मपुत्रस्य धीमतः । अवश्यं तस्य भविता नागानां भयकारकम्[3] ॥२७
तस्मात्कालान्तराद्राजन्साग्रे वर्षशते गते । तत्सत्रं भविता घोरं नागानां क्षयकारकम् ॥२८
यास्यन्त्यधर्मभरिता दन्दशूका विषोल्बणाः । कोटिसङ्ख्या महाराज निपतिष्यन्त्यहर्निशम् ॥२९
अपूर्वे तु निमग्नानां घोरे रौद्राग्निसागरे । आस्तीकस्तत्र भविता तेषां नौर्वह्निसागरे ॥३०
श्रुत्वा स चाग्निं राजानमृत्विजस्तदनन्तरम् । निवर्तयिष्यते यागं नागानां मोहनं परम् ॥३१
पञ्चम्यां तत्र भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् । तस्मादियं महाबाहो पञ्चमी दयिता सदा ॥
नागानामानन्दकरी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ॥३२
कृत्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणानां तु कामतः । विसृज्य नागाः प्रीयन्तां ये केचित्पृथिवीतले ॥३३
ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः । ये नदीषु महानागा ये सरस्वतिगामिनः ॥
ये च वापीतडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ॥३४

तो (वहाँ) जंगल में वह ब्राह्मण जो कुछ याचना करे (मांगे) या कहे उसे निःशंक हो कर करना ।२३। इस भाँति पितामह ब्रह्मा की बातें सुनकर नागवासुकि ने उन्हें प्रणाम करते हुए यत्नपूर्वक उसे सुसम्पन्न करने की स्वीकृति प्रदान की ।२४। इसे सुनकर सभी नागों की आँखें हर्षातिरेक से खिल उठी और वे अपने को फिर से उत्पन्न हुए की भाँति समझने लगे ।२५। हे महाबाहो ! ऋत्विक् (यज्ञ करने वाले)

नागान्विप्रांश्च सम्पूज्य विसृज्य च यथार्थतः । ततः पश्चात्तु भुञ्जीत सह भृत्यैर्नराधिप ।।३५
पूर्वं मधुरमश्नीयात्ततो भुञ्जीत कामतः । एवं नियमयुक्तस्य यत्फलं तन्निबोध मे ।।३६
मृतो नागपुरं याति पूज्यमानोऽप्सरोगणैः । विमानवरमारूढो रमते कालमीप्सितम् ।।३७
इह चागत्य राजासावयुतानां[1] वरो भवेत् । सर्वरत्नसमृद्धः स्याद्वाहनाढ्यश्च जायते ।।३८
पञ्च जन्मान्यसौ राजा द्वापरे द्वापरे भवेत् । आधिव्याधिविनिर्मुक्तः पत्नीपुत्रसहायवान् ।।
तस्मात्पूज्याश्च पाल्याश्च[2] घृतपायसगुग्गुलैः ।।३९

शतानीक उवाच

दशन्ति ये नरं विप्र नागाः क्रोधसमन्विताः । भवेत्किं तस्य दष्टस्य विस्तराद् ब्रूहि मे द्विज ।।४०

सुमन्तुरुवाच

नागदष्टो नरो राजन्प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः । अधो गत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र संशयः ।।४१

शतानीक उवाच

नागदष्टः पिता यस्य भ्राता वा दुहितापि वा । माता पुत्रोऽथ वा भार्या किं कर्तव्यं वदस्व मे ।।४२
मोक्षाय तस्य विप्रेन्द्र दानं व्रतमुपोषणम् । ब्रूहि तद्द्विजशार्दूल येन तद्वै करोम्यहम् ।।४३

का पूजन एवं विसर्जन करके हे राजन् ! पश्चात् सेवकों को साथ ले भोजन करे ।३३-३५। उस समय सर्वप्रथम मधुर भोजन करना चाहिये पश्चात् जैसी रुचि हो । इस प्रकार नियम पूर्वक इसे सुसम्पन्न करने वाले को जो फल प्राप्त होता है, मैं उसे कह रहा हूँ सुनो ।३६। शरीर त्याग करने पर वह प्राणी पहले नाग लोक में जाता है। वहाँ अप्सराएँ उसकी सेवा करती हैं वहाँ उत्तम विमान पर बैठ कर वह अपने मन इच्छित समय तक उनके साथ क्रीडा करता है।३७। और फिर (कभी) इस लोक में

सुमन्तुरुवाच

उपोष्या पञ्चमी राजन्नागनां पुष्टिवर्धनी । त्वमेवमेकं राजेन्द्र विधानं शृणु भारत ॥४४
मासि भाद्रपदे या तु कृष्णपक्षे[1] महीपते । महापुण्या तु सा प्रोक्ता ग्राह्यापि च महीपते ॥४५
ज्ञेया द्वादश पञ्चम्यो हायने भरतर्षभ । चर्तुर्थ्यां त्वेकभक्तं तु तस्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ॥४६
भुवि[2] चित्रमयान्नागानथ वा कलधौतकान् । कृत्वा दारुमयान्वापि अथ वा मृन्मयान्नृप ॥४७
पञ्चम्यामर्चयेद्भक्त्या नागानां पञ्चकं नृप । करवीरैः शतपत्रैर्जातीपुष्पैश्च सुव्रत ॥४८
तथा गन्धैश्च धूपैश्च पूज्य पञ्चकमुत्तमम्[3] । ब्राह्मणं भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ॥४९
अनन्तो वासुकिः शङ्खः पद्मः कम्बल एव च । तथा कर्कोटको नागो नागो ह्यश्वतरो नृप ॥५०
धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालियस्तक्षकस्तथा । पिङ्गलश्च तथा नागो मासि मासि प्रकीर्तिताः ॥५१
वत्सरान्ते[4] पारणं स्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्बहून् । इतिहासविदे नागं गैरिकेण कृतं नृप ॥
तथार्चना प्रदातव्या वाचकाय महीपते ॥५२
एष वै नागपञ्चम्या[5] विधिः प्रोक्ता बुधैर्नृप । तव पित्रा कृतश्चैव पितुर्मोक्षाय भारत ॥५३
त्वमेकमेकं वै वीर पञ्चम्यां भरतर्षभ । सुवर्णभारनिष्पन्नं नागं दत्त्वा तथा च गाय ॥५४

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! उस प्राणी के निमित्त पञ्चमी का व्रत करना चाहिये जो लोगों को सुदृढ़ बनाती हैं अतः हे राजेन्द्र ! तुम उसका एक विधान सुनो ! हे भारत ! अब मैं उसका विधान बता रहा हूँ सुनो ! हे महीपते ! भादों महीने की [1]कृष्ण पक्ष वाली पञ्चमी अधिक पुण्य प्रदान करती है अतः व्रत पूजा हेतु उसी को ग्रहण करना चाहिये ।४४-४५। हे भरतर्षभ ! वर्ष भर में बारह पञ्चमी होती है। इसलिए (उसके विधान में) पञ्चमी के पूर्व चौथ की रात में एक बार भोजन का विधान कहा गया

व्यासाय कुरुशार्दूल पितुरानृण्यमाप्नुयाः । तव पित्रा कृता ह्येवं पञ्चम्युपासना नृप ॥५५
उत्सृज्य नागतां वीर तव पूर्वपितामहः । पुष्पोत्तरं सदो गत्वा तथा पुष्पसदो नृप ॥५६
सुनासीरसदो गत्वा तदा भर्गसदो गतः । स्वभूसदस्ततो गत्वा कञ्जजस्य सदो गतः ॥५७
अन्येऽपि ये करिष्यन्ति इदं व्रतमनुत्तमम् । दष्टको मोक्ष्यते तेषां शुभं स्थानमवाप्स्यति ॥५८
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरः[1] श्रद्धासमन्वितः । कुले तस्य न नागेभ्यो भयं भवति कुत्रचित् ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे नागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।३२।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

सर्पभेदम्

शतानीक उवाच

सर्पाणां कति रूपाणि के वर्णाः किं च लक्षणम् । का जातिस्तु भवेत्तेषां केषु योनिकुलेषु वा ॥१

सुमन्तुरुवाच

पुरा मेरौ नगवरे कश्यपं तपसां निधिम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥२

गौ समेत व्यास (कथावाचक) को देकर अपने पितृ-ऋण से मुक्त हो जाओ । क्योंकि तुम्हारे पिता ने इसी प्रकार की पञ्चमी की पूजा की थी ।५४-५६। हे नृप ! तुम्हारे पूर्व पितामह ने अपनी नाग की शरीर त्याग कर क्रमशः कुवेर, इन्द्र, शिव, ब्रह्म एवं विष्णु के लोक की प्राप्ति की है ।५७। इसी प्रकार अन्य जो लोग भी इस व्रत को सुसम्पन्न करेंगे तो प्राणियों को जिन्हें साँप ने काट खाया है नित्य उत्तम

सर्पाणां कति रूपाणि किं चिह्नं किं च लक्षणम् । जातिं कुलं तथा वर्णान्ब्रूहि सर्वं प्रजापते ॥३
कथं वा जायते सर्पः कथं मुञ्चेद्विषं प्रभो । विषवेगाः कति प्रोक्ताः कत्येव विषनाडिकाः ॥४
दंष्ट्राः कतिविधाः प्रोक्ताः किं प्रमाणं विषागमे । गृह्णीते तु कदा गर्भं कथं चेह प्रसूयते ॥५
कीदृशी स्त्री पुमांश्चैव कीदृशश्च नपुंसकः । किं नाम दशनं चैव एतत्कथय सुव्रत ॥६
तस्य[1] तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपः प्रत्यभाषत । शृणु गौतम तत्त्वेन सर्पाणामिह लक्षणम् ॥७
मास्याषाढे तथा ज्येष्ठे प्रमाद्यन्ति भुजङ्गमाः । ततो नागोऽथ नागी च मैथुने सम्प्रपद्यते ॥८
चतुरो वार्षिकान्मासान्नागी गर्भमधारयत् । ततः कार्त्तिकमासे तु अण्डकानि प्रसूयते ॥९
अण्डकानां तु विज्ञेये द्वेशते द्वे च विंशती । तान्येव भक्षयेत्सा तु भोगैकं घृणया त्यजेत् ॥१०
स्वर्णार्कवर्णाद्वै तस्मात्पुमान्सञ्जायतेऽण्डकात् । तान्येव खादते सर्प अहोरात्राणि विंशतिम् ॥११
स्वर्णकेतकवर्णाभाद्दीर्घराजीवसन्निभात् । तस्मादुत्पद्यते स्त्री वै अण्डाद्ब्राह्मणसत्तम ॥१२
शिरीषपुष्पवर्णाभादण्डकात्स्यान्नपुंसकः । ततो भिनत्ति चाण्डानि षण्मासेन तु गौतम ॥१३
ततस्ते प्रीतिसम्बन्धात्स्नेहं बध्नन्ति बालकाः । ततोऽसौ सप्तरात्रेण कृष्णो भवति पन्नगः ॥१४
आयुःप्रमाणं सर्पाणां शतं विंशोत्तरं स्मृतम् । मृत्युश्चाष्टविधो ज्ञेयः शृणुष्वात्र यथाक्रमम् ॥१५
मयूरान्मानुषाद्वापि चकोराद्गोखुरात्तथा[2] । बिडालान्नकुलाच्चैव वराहाद्भृङ्गिकात्तथा ॥

साँपों के कितने रूप, चिह्न, लक्षण जाति, कुल एवं रंग हैं ये सभी बाते हमें बताने की कृपा करे ।२-३। साँप कैसे उत्पन्न होते हैं, वे कैसे काटते हैं और विष को कैसे छोड़ते हैं, कितने विष के आवेग एवं कितनी विष की नाड़ियाँ हैं, दाँत के भेद तथा उनके विषधर होने में क्या प्रमाण है ? कब गर्भ धारण करते हैं और कैसे बच्चा उत्पन्न करते हैं ? तथा उनमें किस भाँति की स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक होते हैं एवं काटना किसे कहते है । हे सुव्रत ! ये सभी बाते मुझसे कहें ।४-६। उनकी बातें सुनकर कश्यप ने कहा—गौतम ! सावधान होकर साँपों के लक्षणों को मैं बता रहा हूँ सुनो । आषाढ और जेठ के मास में साँप मतवाले होते

एतेषां यदि मुच्येत जीवेद्विंशोत्तरं शतम् ॥१६
सप्ताहे तु ततः पूर्णे दंष्ट्राणां चाधिरोहणम् । विषस्यागमनं तत्र निक्षिपेच्च पुनः पुनः ॥१७
एवं ज्ञात्वा तु तत्त्वेन विषकर्म्मारभेत वै । एकविंशतिरात्रेण विषदंष्ट्रा सुजायते ॥
नागीपार्श्वसमावर्ती बालसर्पः स उच्यते ॥१८
पञ्चविंशतिरात्रस्तु सद्यः प्राणहरो भवेत् । षण्मासाज्जातमात्रस्तु कञ्चकुं वै प्रमुञ्चति ॥१९
पादानां चापि विज्ञेये द्वे शते द्वे च विंशती । गोलोमसदृशाः पादाः प्रविशन्ति क्रमन्ति च ॥२०
सन्धीनां चास्य विज्ञेये द्वेशते विंशती तथा । अंगुल्यश्चापि विज्ञेया द्वे शते विंशती तथा ॥२१
अकालजाता ये सर्पा निर्विषास्ते प्रकीर्तिताः । पञ्चसप्ततिवर्षाणि आयुस्तेषां प्रकीर्तितम् ॥२२
रक्तपीतशुक्लदन्ता अनीला मन्दवेगिनः । एते अल्पायुषो ज्ञेयो अन्ये च भीरवः स्मृता ॥२३
एकं चास्य भवेद्वक्त्रंद्वे जिह्वे च प्रकीर्तिते । द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ताः पन्नागानां न संशयः ॥२४
तेषां मध्ये चतस्रस्तु दंष्ट्रा याः सुविषावहाः । मकरी कराली कालरात्री यमदूती तथैव च ॥२५
सर्वासां चैव दंष्ट्राणां देवताः परिकीर्तिताः । प्रथमा ब्रह्मदेवत्या द्वितीया विष्णुदेवता ॥
तृतीया रुद्रदेवत्या चतुर्थी यमदेवता ॥२६
हीना प्रमाणतः सा तु वामनेत्रं समाश्रिता । नास्यां मन्त्राः प्रयोक्तव्या नौषधं नैव भेषजम् ॥२७
वैद्यः पराङ्मुखो याति मृत्युस्तस्या विलेखनात् । चिकित्सा न बुधैः कार्या तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२८
मकरीं मासिकां विद्यात्कराली च द्विमासिका । कालरात्री भवेत्त्रीणि चतुरो यमदूतिका ॥२९

उनमें विष-संचय भी होने लगता है ।१६-१७। इसे जानते हुए भी वे काटना आरम्भ कर देते हैं ...

मकरीं गुडौदनं[1] दद्यात्कषायान्नं करालिकाम् । कालरात्रीं कटुयुतं दूतीं वै सान्निपातिकम् ॥३०
मकरी शस्त्रकं विद्यात्करालीं काकपादिका । कराकृतिः कालरात्रिर्याम्या कूर्माकृतिः स्मृता ॥३१
मकरी वातुला ज्ञेया करालीं पैत्तिकी स्मृता । कफात्मिका कालरात्री यमदूती सान्निपातकी ॥३२
शुक्ला तु मकरी ज्ञेया करालीं रक्तसन्निभा । कालरात्री भवेत्पीता कृष्णा च यमदूतिका ॥३३
वामा शुक्ला च कृष्णा च रक्ता पीता च दक्षिणा । समासेन तु वक्ष्यामि यथैता वर्णतः स्मृताः ॥३४
शुक्ला तु ब्राह्मणी ज्ञेया रक्ता तु क्षत्रिया स्मृता । वैश्या तु पीतिका ज्ञेया कृष्णा शूद्रा तु कथ्यते ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि दंष्ट्राणां विषलक्षणम्[2] ॥३५
दंष्ट्राणां तु विषं नास्ति नित्यमेव भुजङ्गमे । दक्षिणं नेत्रमासाद्य विषं सर्पस्य तिष्ठति ॥३६
सङ्क्रुद्धस्येह सर्पस्य विषं गच्छति मस्तके । मस्तकाद्धमनीं याति ततो नाडीषु गच्छति ॥३७
नाडीभ्यः पद्यते दंष्ट्रां विषं तत्र प्रवर्तते । तत्सर्वं कथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥३८
अष्टभिः कारणैः सर्पो दशते नात्र संशयः । आक्रान्तो दशते पूर्वं द्वितीयं पूर्ववैरिणम् ॥३९
तृतीयं दशते भीतश्चतुर्थं मददर्पितः । पञ्चमं तु क्षुधाविष्टः षष्ठं चेह विषोल्बणः ॥
सप्तमं पुररक्षार्थमष्टमं कालचोदितः ॥४०
यस्तु सर्पो दशित्वा[3] तु उदरं परिवर्तयेत् । बलभुग्नाकृतिं दंष्ट्रामाक्रान्तं तं विनिर्दिशेत् ॥४१

मकरी के लिए गुड़, चावल, करालीं के लिए कपास स्वाद के अन्न, कालरात्री के लिए कड़वी वस्तु एवं यमदूती के लिए ये सभी वस्तुएँ एक में मिलाकर देना चाहिये ।३०। शस्त्र की भाँति मकरी, कौवे के पैर की भाँति करालीं, हाथ की भाँति कालरात्रि और कछुवे के समान यमदूती का आकार होता है । मकरी

यस्य सर्पेण दष्टस्य गभीरं दृश्यते व्रणम् । वैरदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४२
एकं दंष्ट्रापदं यस्य अव्यक्तं न च कल्पितम् । भीतदष्टं विजानीयाद्यथोवाच प्रजापतिः ॥४३
यस्य सर्पेण दष्टस्य रेखा दन्तस्य जायते । मददष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४४
द्वे च दंष्ट्रापदे यस्य दृश्यन्ते च महाक्षतम् । क्षुधाविष्टं विजानीयाद्यथोवाच प्रजापतिः ॥४५
द्वे दंष्ट्रे यस्य दृश्येते क्वचिद्रुधिरसङ्कुले । विषोल्बणं विजानीयाद्दंशं तं नात्र संशयः ॥४६
अपत्यरक्षणार्थाय जानीयात्तं न संशयः । यत्तु काकपदाकारं त्रिभिर्दन्तैस्तु लक्षितम् ॥४७
महानाग इति प्रोक्तं कालदष्टं विनिर्दिशेत् । त्रिविधं दष्टजातैस्तु लक्षणं समुदाहृतम् ॥४८
दष्टानुपीतं विज्ञेयं कश्यपस्य वचो यथा । विषभागात्तु सर्पस्य त्रिभागस्तत्र संक्रमेत् ॥४९
उदरं दर्शयेद्यस्तु उद्धतं तं विनिर्दिशेत् । छर्दितं विषवेगेन निर्विषः पन्नगो भवेत् ॥५०
असाध्यश्चापि विज्ञेयश्चतुर्दंष्ट्राभिपीडितः । ग्रीवाभङ्गो भवेत्किञ्चित्सन्दष्टो विषयोगतः ॥
इतो दंशस्ततः शुद्धो व्यन्तरः परिकीर्तितः ॥५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे सर्पदंष्ट्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।३३।

(छिद्र) हो जाय, कश्यप के कथनानुसार उसे शत्रुता वश (उसका) काटना जानना चाहिये ।४२। (जिसके) एक दाँत का चिह्न हो जो स्पष्ट हो किन्तु कल्पित (बनावटी) न जान पड़े प्रजापति ने कहा है, उसे भयभीत होकर साँप का काटा हुआ जानें ।४३। साँप के काटने पर जिसके दाँत की रेखा (समान) हो जाये, कश्यप के वचनानुसार उसे मतवाले साँप द्वारा काटा गया समझना चाहिये ।४४। जिसके दो